कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥



तू केवल कर्म कर—कर्म के फल की
इच्छा मत कर! कर्मों के फल की
वासना वाला भी मत हो तथा कर्म न
करने में तेरी प्रीति न हो।



सरस्वती विहार

रामकुमार भ्रमर

कपिड़ा



भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

कर्मयज्ञ

(उपन्यास)

प्रथम संस्करण : १९८६

प्रकाशक :
सरस्वती विहार
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

मुद्रक :
नागरी प्रिंटर्स दिल्ली-११००३२

मूल्य : पैंतीस रुपये

KARMA YAGYA
(Novel)
RAMKUMAR BHRAMAR

First Edition : 1986

Price : 35.00

'कर्मयज्ञ' से 'कालयवन' तक

भगवान् श्री कृष्ण का जीवन इतना बहुरंगी है कि उसके सम्पूर्ण रंग सहेज पाना दुष्कर ही नही, असंभव कार्य है, फिर भी मैंने 'कर्मयज्ञ' मे प्रयत्न किया है कि उनकी किशोरावस्था के तुरत बाद का वह जीवनारंभ संयोजित किया जा सके, जो उन्हें मनुष्येतर बनाता है। जीवन, व्यवहार, राजनीति और यथार्थ की दृष्टि से उनके उस कर्मवादी स्वरूप का दर्शन कराना ही इस खंड का अभिप्राय है, जिसने उन्हें जन-जन मे स्थापित किया।

कंस-वध ने मथुरा ही नही, समग्र भरत खंड की राजनीतिक धुरी को हिला डाला था और सहसा बालक श्री कृष्ण जन-जन के बीच चर्चा और उत्सुकता का कारण बन गये थे। अपरोक्ष रूप से कंस के दुर्दम्य शासन का अन्त करके श्री कृष्ण ने केवल जरासन्ध जैसी शक्ति को ही नही ललकारा था, अपितु भारतीय राजनीति को एक सैद्धांतिक परिवर्तन की भी दिशा दे दी थी। 'कर्मयज्ञ' उनके उस अति यथार्थवादी सिद्धांत-पुरुष का प्रारंभ है, जिसने भविष्य मे भारतीय राजनीति को अपरिवर्तित मूल्य प्रदान किये। यह मनुष्य जीवन की सतत संघर्षपूर्ण यात्रा का भी पहला चरण है, जो युग-युगों तक प्रेरणा देता रहा है, देता रहेगा।

'कर्मयज्ञ' व इसके आगे आनेवाला हर खंड श्रीकृष्ण के घटनापूर्ण जीवन के साथ-साथ उस कर्म, ज्ञान, ध्यान, भक्ति योग का भी व्यावहारिक संकेत कराता है, जिसे उन्होंने महाभारत युद्ध के समय 'गीता' में अभिव्यक्त किया।

५३/१४, रामजस रोड, करौलबाग,
नयी दिल्ली-११०००५

—रामकुमार भ्रमर

कर्मयज्ञ

कस उग्र होते जा रहे है। लगता है कि किसी दिन उत्तेजना में स्वजनों के प्रति ही हिंसक हो उठेंगे। प्राप्ति से जब-जब भेंट हुई है, तब-तब उन्हें असहज ही पाया है। लगता है कि सहजता कभी उनके साथ रही ही नहीं। प्राप्ति सोचती है और तुरंत ही अनुभव होता है कि दोषी पति नहीं, प्राप्ति का अपना भाग्य है। भाग्य न होता, तब क्या बाल्यावस्था से लेकर किशोरायु और अब यौवन भी इस तरह अशांति और क्रोध की ज्वालाओं से घिरा रहता ?

निस्सन्देह नियतिचक्र ही है यह। पितृगृह से प्रारंभ हुई यात्रा पुनः पितृगृह पर आकर समाप्त हो गयी है। इस समूची यात्रा में प्राप्ति को कोई ऐसा पल स्मरण नहीं, जब अशान्ति और व्यग्रता ने उसे सर्प की भांति डसा न हो, कोई ऐसी घटना नहीं, जो सहज ढंग से घटी हो। यह कहा जाये तो अधिक उपयुक्त होगा कि प्राप्ति इस समूचे काल खंड में उस निष्क्रिय जड़ वस्तु के बोध से भरी रही है, जो मात्र देख सकती है, जिसके वश में किसी तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करना नहीं होता।

मगधपति जरासन्ध की पुत्री के नाते विशाल साम्राज्य और सुख-वैभव सभी कुछ देखा-भोगा है प्राप्ति ने, किन्तु लगता है कि सुख, वैभव और आनंद की वह जलधारा न उसके शरीर को आनंद दे सकी है, न मन को

तृप्ति। कैसी विचित्र स्थिति है यह ! जल प्रभावहीन हो गया है। कैसा दुख कि धन, वैभव, समृद्धि और सत्ता निर्जीवता से भरे हुए हैं।

महाराज जरासन्ध की जीवन कथा सफलताओं, जयों और जय-जयकारों से भरी हुई है, पर मगध के राजभवन में गुड़ियों से खेलती प्राप्ति और अस्ति के लिए निरंतर खोखली रही। बालक को चाहिये सरल, स्नेहिल मुस्कान, पिता का मधुर स्पर्श और स्नेहपूर्ण शब्द। वह सब कभी नहीं मिला। सम्पूर्ण के भीतर यह कैसा अनोखा असम्पूर्ण है ! समृद्धि के बीच यह कंगाली और जीवंतता में घोर जड़ता !

फिर वह महारानी बनी। विशाल मथुरा गणसंघ की गौरवगरिमा ! मथुराधिपति कंस की अंकशायिनी ! जिस क्षण गिरिव्रज से विदा हुई थी, सोचा था कि पतिगृह में मन को आनंद और भराव मिलेगा, किन्तु कुछ ही समय में समझ लिया था, व्यर्थ है। लगा था कि एक और जरासन्ध के मगध में आ पहुंची है। पिता की ही तरह पति भी प्रतिक्षण राजनीति और युद्ध के तानों-बानों को बुनते-उधेड़ते हुए। वैसे ही उग्र स्वभाव, वैसे ही क्रोधी और उनसे कहीं अधिक शक्तिमद में चूर !

एक बार पुनः नयी तरह, नयी जगह, नयी किस्म के खोखलेपन ने प्राप्ति के मन-शरीर को जकड़ लिया था ! लगता था कि भीड़ के बीच रहकर भी अकेली है ! वही जड़बोध, निष्क्रियता और खोखली खिलखिलाहटें !

मथुरा के राजभवन में पहुंचकर कुछ ही समय बाद जान लिया था कि नियति ने कौमार्य से विवाहिता का रूप देकर केवल केंचुल बदली है, विष नहीं त्यागा। ना ही रूप-आकार में कोई अन्तर पड़ा।

चाहा था कि महाराज कंस का कुछ समय मिले। खंड-खंड ही सही, किन्तु कुछ पल पा जायें, पर जल्दी ही समझ लिया था असंभव है। किसी बार महाराज गणसंघ की बाह्य राजनीति से रक्षा के उपायों में व्यस्त रहते, किसी बार आन्तरिक कलह उन्हें अशान्त किये रहता। फिर आया कृष्ण-

काल ! उसने जिस तरह भूकंपवत् कंस का जीवन झकझोर डाला, उस तरह तो कंस, कंस होकर भी कंस नहीं रहे !

पूतना, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, एक के बाद एक का संहार करके उस बालक ने किसी चमत्कार की तरह महाराज कंस को असहज बना छोड़ा। प्राप्ति मूक भाव से सब कुछ देखती-सुनती और सोचती रही थी। मथुरा के एक-एक शक्तिस्तंभ को गिराता हुआ वह बालक पल-पल पति की व्यग्रता के कारण से कहीं अधिक प्राप्ति को उनके नाश की सूचना देता जा रहा था। तब भी चाहा था प्राप्ति ने, पति को समझाये। कहें कि नीति से उस ईश्वरीय शक्ति को समझें। उसी तरह उसकी पूजा-आराधना करके उसे प्रसन्न कर लें और गृह-कलह से निष्कंटक हों।

पर चाहना चाहना ही रही। कंस उग्र और उदग्र होते गये। इतने हुए कि लगने लगा जैसे वह भी नियति-चक्र में घिर गये हैं। यह नियति-चक्र ही तो है कि निरंतर दुर्बुद्धिपूर्ण सम्मतियों और चेष्टाओं में व्यस्त हो रहे।

कितना अच्छा होता, उस समय मथुराधिपति को रोका-टोका होता, प्राप्ति सोचती है। मन कहता है, टोका तो था उन्हें, किन्तु वह···?

फिर जैसे होंठ इनकार कर देते हैं, नहीं, उस तरह नहीं, जिस तरह टोकना चाहिये था। पत्नी अर्द्धांगिनी होती है। कुमति के समय सुमति देना उसका धर्म ! यों भी नीति और योग्यता केवल पुरुष में ही तो नहीं होती, स्त्री भी बहुत कुछ सुझा-समझा सकती है सम्मति दे सकती है, दबाव डाल सकती है, पर तुमने तो वैसा कुछ भी नहीं किया प्राप्ति ?

सम्मति दी थी। क्या वह सम्मति ही थी ? मन उबलकर सवाल करने लगता है। लगता है कि प्राप्ति को धिक्कारने लगी है आत्मा। नहीं, वह सम्मति नहीं, केवल प्रार्थना थी। और शक्तिशाली लोगों से प्रार्थनाएं नहीं की जातीं, उन पर कहीं किसी तरह दबाव भी डाला जाता है। प्राप्ति चाहती, तो वह कर सकती थी।

निस्सन्देह ! प्राप्ति अपने ही भीतर दोषी भाव से भर उठती है। सच

है। यह चाहती तो कर सकती थी, किन्तु उन्होंने की प्रार्थना, एक दया-याचना की मुद्रा मे डूबी हुई कायर अभिव्यक्ति।

वह दिन अब भी स्मरण मे अंकित है। [महाराज कंस वत्सासुर और बकासुर के वध की बात सुनकर बहुत असहज हो उठे थे, किन्तु प्रद्युम्न को बुलाकर आदेश दिया था, "जैसे भी हो, हमें उस दुष्ट बालक का शव चाहिये।"

केशी ने सिर झुकाकर निवेदन किया, "आज्ञा हो तो धेनुकासुर और अघासुर से वार्ता करूं महाराज, दोनों ही असुरराज न केवल शक्तिशाली हैं, उनके साथ बड़ी मात्रा में असुर योद्धा भी हैं।"

"जैसा आप लोग उचित समझें।" कंस जबड़े कसे हुए, उत्तप्त स्वर मे बोले थे, फिर आसन छोड़कर प्राप्ति के कक्ष की ओर बढ़ चले। केशी और प्रद्युम्न वापस हुए।

प्राप्ति पति के पीछे-पीछे चलती हुई कक्ष में पहुंची। मन ही मन निश्चय कर लिया था कि पति के तनिक सहज होते ही उनसे निवेदन करेंगी, क्या नन्दसुत से वार्ता नही की जा सकती? गोकुल के गोप उसी के प्रभाव मे हैं। निश्चय ही वह प्रभावी बालक अद्भुत है और अद्भुत व्यक्तियों से शत्रुता के बजाय मैत्री करना अधिक हितकर है।

मथुराधिपति ने आसन ग्रहण किया, किन्तु उत्तेजना के कारण वह स्वाभाविक नही दीख रहे थे। उनसे कहीं अधिक अस्वाभाविक थी उनकी दृष्टि। प्राप्ति एक क्षण उनकी उद्विग्नता को किसी ज्वाला की तरह सहती हुई शान्त रही थी, फिर मीठे और धीमे स्वर में कहा था उसने, "राजन्, रुष्ट न हो तो एक निवेदन करूं।"

कंस बोले नही, केवल दृष्टि उठाकर पत्नी को देखा। यह देखना ही स्वीकृति थी। किन्तु यह स्वीकृति भी असहज। ऐसे जैसे विषय से अतिरिक्त न कुछ सुनना चाहते हैं, न ही समझने की इच्छा है उनमें।

पर प्राप्ति ने तय कर लिया था कि कहेंगी अवश्य। इसीलिए कहा, "आपकी व्यग्रता और चिन्ता का कारण समझती हूं। वह मेरी भी चिन्ता है। इसी कारण सोचती हूं कि उस अद्भुत बालक को आप स्वयं देखें-परखें। मुझे विश्वास है कि स्नेहिल व्यवहार और राज-अनुग्रह से वह तो प्रसन्न होगा ही, उसे ईश्वर मानने वाले गोप भी प्रसन्न होंगे।"

कंस ने पत्नी को देखा। कुछ कहा नही, किन्तु मुद्रा में आये जकड़ाव और आंखों के क्रोध ने प्रकट किया कि उन्हे पत्नी का सुझाव रुचा नही है। प्राप्ति ने अपनी बात को तर्क से अधिक जोड़ा, बोली, "अशिष्टता न समझें देव, जिस तरह वत्सासुर और बकासुर का उसने संहार किया है, जिस अभूतपूर्व और अविश्वसनीय शक्ति से उसने संहारक विष से भरे स्तनो का पान किया है, उससे यह सिद्ध है कि वह अतिमानवीय शक्तियों से पूर्ण है।"

"यानी तुम कहना चाहती हो कि वह बालक साक्षात् देव है?" कंस ने कुछ कुढ़ते स्वर में प्रश्न किया, "ईश्वर।"

"नही-नही, स्वामी, नही।" तुरत ही प्राप्ति को अनुभव हुआ कि जिस तरह कहा-समझाया जाना चाहिए, उस तरह कह नही सकी है। अतः बोली, "मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नही था। मै तो केवल यह कहना चाहती थी कि एक बार स्वयं तो देख लें उसे; आखिर उस बालक में अद्भुतता क्या है? है भी या नही? अथवा पूतना, तृणावर्त, वत्सासुर और बकासुर का वध केवल संयोग मात्र है?"

"संयोग नही, देवी, षड्यंत्र!" कंस आसन से उठ बैठे थे। कठोर स्वर में उत्तर दिया था, "तुम राजनीतिक षड्यंत्रों को नही जानती, राजमहिषी, इसी कारण ऐसा सोचती हो। निस्सन्देह यह सब वसुदेव समर्थक कर रहे है। जिन वीरों का संहार किया गया है वह असामान्य बल,

शक्ति और बुद्धि के स्वामी थे एक पांच-छह् वर्ष का दुधमुंहा बालक उनका संहार नही कर सकता। जो कुछ हुआ या हो रहा है वह सामान्य जन को चमत्कृत करने की एक दुश्चेष्टा-भर है और कंस ऐसी दुश्चेष्टाओं का नाश करना जानते है।"

"किन्तु राजन् !" प्राप्ति ने पुनः कुछ कहना चाहा था। कंस ने बात तोड़ दी थी, "तुम निश्चिन्त रहो, प्राप्ति, शीघ्र ही सब सहज हो लेगा। सब शान्त हो जायेगा। षड्यंत्र क्षणिक रूप से अवश्य मनुष्य और समाज को प्रभावित करते हैं, किन्तु बुद्धि, शक्ति और योग्यता के रहते वे सफल नही हो पाते।" प्राप्ति चुप हो रही थी।

यह चुप उनकी भूल हुई या प्राप्ति को चुप कर देना कंस की भूल हुई? कौन जाने? कौन कहे? किन्तु इतना सत्य है, उस समय चुप होना या चुप कर देना ही अहितकर हुआ। इतना कि मथुराधिपति की मृत्यु मात्र नही बना, प्राप्ति का वैधव्य बन गया। जीवित होते हुए भी मृतवत् जीवन जीना कितना कष्टकर हो सकता है, इसकी कल्पना केवल विधवा ही कर सकती है। प्राप्ति कर रही है।

मन होता है कि विगत को, जो किसी विषमय फोड़े की तरह आत्मा पर बिखरा हुआ है, शारीरिक चेष्टा से उलीच फेंकें किन्तु वैसा हो नही पाता। इसके विपरीत होता यह है कि फोड़ा पल-पल टीसने लगता है। ये टीसें एकान्तों मे चीखें बन जाती हैं। ऐसी चीखें, जिनमें विगत की एक-एक घटना भरी हुई है। किसी चित्र की तरह।

महाराज कस ने प्राप्ति का वह निवेदन ठुकरा दिया था। उसी मिठास और स्नेहपूर्ण स्वर के साथ, जिस तरह निवेदन किया गया था और प्राप्ति

आगे घटता रहा सब कुछ, हर घटना, हर षड्यंत्र इस तरह देखती गयी थी, जैसे भित्तिचित्र मे अंकित कोई राजकुमारी हों।

हां, यही स्थिति हुई थी प्राप्ति की। केवल प्राप्ति की ही क्यों, उन सबकी यही स्थिति थी, जो कह भले न पा रहे हों, किन्तु जान रहे थे कि महाराज कंस अकारण ही किसी ज्वालमुखी को कुरेदे जा रहे हैं। एक के बाद एक टीस देते हुए। एक के बाद एक कष्ट पहुंचाते हुए।

' अघासुर से सम्पर्क साधा गया था। सेनापति केशी महाराज कंस का आदेश पाते ही सक्रिय हो गये थे। असुरों की एक बस्ती ही बसी हुई था मथुरा मे। रहन-सहन, आचार-विचार, धर्म-व्यवहार, पूजा-अनुष्ठान कुछ भी आर्यों से नहीं मिलते थे, किन्तु बहुत समय से आर्यावर्त में उनके आने-जाने और बहुतों के स्थायी रूप से रहने के कारण सामान्य मानवीय सम्बन्ध बने हुए थे।

बहुतेक असुरों को मथुराधिपति ही नहीं, अनेक आर्य राजाओं ने केवल शरण ही नहीं दी थी, अपितु उन्हें व्यवसाय की सुविधाएं भी प्रदान की थी। बहुतेक असुर शासकीय सेवा में भी थे। राजाओं के विश्वासपात्र भी। अनेक असुर सुन्दरियां राजमहलों से लेकर जन-सामान्य तक अपने सौन्दर्य, व्यवहार और आकर्षक रूप के कारण गहरे तक समायी हुई थी। वे कलाप्रेमी भी थे, गुणी भी। युद्ध की दृष्टि से भी पर्याप्त कुशल थे वे। अनेक ऐसे अस्त्रास्त्र उनके पास थे, जो आर्यों के पास नहीं थे। आर्यावर्त के राजाओं ने सभ्यता और संस्कृति के आदान-प्रदान से बहुत कुछ उनसे पाया था, बहुत कुछ उन्हें दिया था।

सागर तटों पर असुर बड़ी मात्रा में थे। वे दूर असीरिया से आते थे।

कब आने शुरू हुए, इसका समय-काल निश्चित नहीं था, किन्तु अनुमान था कि वे और अन्य देशों के व्यापारी आर्यावर्त में युगों पूर्व आने प्रारंभ हुए थे। ठीक उसी तरह, जैसे आर्य भी समुद्र-यात्राएं करते हुए दूर-दूरंत विदेशों तक जाते रहते थे।

ये असुरों में केवल असीरियन ही नहीं थे, अन्य देशों के लोग भी थे, किन्तु उन सभी को मथुरा में एक क्षेत्र विशेष दे दिया गया था, ताकि आर्यों के रहन-सहन और जीवन पर उनका प्रभाव न हो। एक आशंका यह भी सदा रहती थी कि परस्पर विरोधी आचार-विचार, रहन-सहन और धार्मिक रीति-रिवाजों और मान्यताओं के कारण देशी-विदेशी लोगों में टकराव न हो जाये। परिणाम यह हुआ था कि ऐसे लोग, जो बस्तियों और झुंडों की शक्ल में जहां-तहां बिखर गये थे, अपने-आप में संगठित ही नहीं हुए थे, बल्कि बहुत सीमा तक शक्तिशाली भी हो गये थे। हालांकि यह सदा ही इस बात से सतर्क रहते थे कि आर्यों से टकराव न होने पाये। उन्हें आर्यों की अद्भुत क्षमताओं, वैज्ञानिक उपलब्धियों और शक्ति के बारे में बहुत कुछ जानकारियां भी थीं, अनुमान भी थे।

पूतना और बकासुर का छोटा भाई था अघासुर। राजकार्य के लिए अपनी बहिन और भाई के वध से उत्तेजित भी था, क्रोधित भी। शक्ति और समृद्धि ने उसके क्रोध और उत्तेजना को गोकुल, गोप और बालक कृष्ण-बलराम के प्रति घृणा से भर रखा था। जिस क्षण बहिन की मृत्यु का समाचार मिला, उसी क्षण अघासुर बहुत चीखने-दहाड़ने लगा था, किन्तु जाति भाइयों के समझाने-बुझाने पर सहज हुआ। फिर पता चला कि बालक ने बकासुर का भी बड़ी निर्ममता से वध कर डाला है। घृणा और क्रोध ने अघासुर को प्रतिशोध की ज्वाला से झुलसा दिया। वैसे में ही होम की तरह केशी का बुलावा उसे मिला।

अघासुर तुरंत सेनापति के समक्ष उपस्थित हुआ। आकार-प्रकार से बहिन और भाई की ही तरह भीमकाय था। अपने देश की विशिष्ट

वेशभूषा उसने पहन रखी थी। आंखें सुर्ख थी उसकी। बाल घुघराले और चमकते हुए। विशिष्ट ढंग से उन्हें उसने कन्धो तक बिछा रखा था। केशी के सामने उपस्थित होकर उसने आदरपूर्वक अभिवादन किया और पूछा, "आज्ञा, सेनापति।"

केशी ने शान्त स्वर में कहा था, "तुम्हें देखकर प्रसन्नता हुई अघासुर, अब हमें विश्वास है कि वह दुष्ट और छली बालक मथुराधिपति की व्यग्रता का कारण नहीं रहेगा। यों भी हमने तुम्हें इस कारण बुलाया है, ताकि तुम पूतना और वीर बकासुर की क्रूर और षड्यंत्रपूर्ण हत्याओं का बदला दुष्ट कृष्ण से ले सको।"

"आपकी कृपा है सेनापति।" अघासुर ने प्रसन्न होकर सिर झुकाया था, "बहुत इच्छा थी कि उस नीच बालक का वध मेरे हाथों हो। आपने अवसर देकर मुझे सुखी किया।"

"कृष्ण बहुत छली है, अघासुर, फिर हमारा अनुमान है कि जिन असुर, वीरों का उसने वध किया है, वह स्वाभाविक ढंग से नहीं, अपितु गोकुल के गोपों के सहयोग-षड्यंत्र से संभव हुआ है। स्मरण रहे कि ऐसे दुष्टों को मारने के पूर्व तुम पूरी तरह सतर्क ही न रहो, पर्याप्त रक्षा-व्यवस्था भी करो। हम बुद्धिमती पूतना और पराक्रमी बकासुर के वध से बहुत दुखी हुए हैं असुर, अतः चाहते हैं कि आगत के प्रति तुम्हें ही नहीं, उन सभी को सावधान करें जो कृष्ण-बलराम जैसे दुष्टों से मथुराधिपति का मार्ग निष्कंटक करना चाहते हैं।"

"आश्वस्त हो, राजन्! मैं जानता हूं मुझे वध पूर्व किस तरह छल रचना करनी होगी!" अघासुर ने सिर झुकाकर उत्तर दिया। वह प्रसन्न था, गौरवान्वित भी। जानता था कि मथुराधिपति की कृपा प्राप्त करने का अवसर कितना बहुमूल्य है और वही उसे मिल रहा था।

केशी ने आज्ञा दी थी, "तब प्रातः ही तुम गोकुल प्रस्थान करो।"

अघासुर प्रणाम करके विदा हुआ।

पूतना, तृणावर्त, वत्सासुर और बकासुर ! एक के बाद एक षड्यन्त्र। यशोदा और नन्द गोप जान रहे थे कि कृष्ण का गोकुल में रहना सुरक्षित नहीं है। न केवल कृष्ण के लिए, अपितु गोकुलवासियों के लिए भी। वृंदावन क्षेत्र की ओर आकर भी गोपों को शान्ति नहीं मिली थी। प्रतिक्षण असुरक्षा का भाव मन में समाया रहता। बार-बार कृष्ण-बलराम पर दृष्टि जाती, मन भर आता। नन्द बाबा अपनी सरलता, सहृदयता के लिए सभी के प्रिय थे। उनसे अधिक प्रिय हो गये थे कृष्ण। क्यों न हो ? कितनी बार असंभव को संभव जो कर दिखाया था उन्होंने। एक निश्चित धारणा मन में घर कर गयी थी, नन्दलाल निश्चय ही असमान्य है। दैवीय, अलौकिक ! ईश्वर अथवा ईश्वरवत् !

नेह धीमे-धीमे श्रद्धा में बदलने लगा था। श्रद्धा उन्मुख हो रही थी भक्ति की ओर। यह भक्ति ही साहस और शक्ति बनकर मन-शरीर को जुटाये हुए थी।

बालक कृष्ण की नटखट चपलता और सहज हास्य स्त्रियों के लिए मोह बनने लगा था। इस मोह का आदि-अन्त नहीं। आयु और शरीर से परे। यशोदा को लगता कि हर नारी दृष्टि कन्हैया को दुलराती रहती है। डर जाया करती। कभी डिठौना लगाती माथे पर, किसी बार पूजा-अर्चना

करके ईश्वर से प्रार्थना किया करती, "कन्हैया को इन स्त्रियों की दृष्टि से बचाना, भगवन् ! कैसे-कैसे तो घूरती रहती है।" फिर बालक पर ही क्रोध आने लगता। झुंझलाकर तरह-तरह से उसे घर में ही बांधे रखना चाहती। खीजती, कहती, "तू कहीं नहीं जायेगा। यहीं बैठ।"

"पर माता।" कन्हैया कुनमुनाता, किसी बार रूठता। भोजन अस्वीकार कर देता। कहता, "मैं नहीं खाऊंगा।"

"खायेगा क्यों नहीं? इतना तो बनाया है। तुझे खीर भाती है ना? वह भी है।" यशोदा दुलराती, चूम लेती। वह गाल पोंछकर कहता, "नहीं, मुझे कुछ नहीं खाना। तुम मुझे खेलने नहीं जाने देती। मैं कुछ नहीं खाऊंगा। सब यमुना तट पर खेलने जाते हैं। गेंद खेलते हैं, कुश्ती लड़ते हैं और मुझे तुम यहां बिठाले रहती हो? बस खा-खा ! कब तक खाऊं? अब नहीं खाऊंगा !"

यशोदा समझाती, "वे सब तो उद्दंड हैं, इसीलिए नहीं मानते, पर तू तो अच्छा बेटा है न मेरा। खा और यहीं बैठ। यहां घर में खेलने को क्या कुछ नहीं है? देख।" फिर तरह-तरह के खिलौने ले आती, कहती, "यह देख, राजा की मूरत, सैनिक अस्त्र सहित, यह लुभावनी गुड़िया और कैसे-कैसे जीव? कितनी मूरतें तो हैं। इन्हीं से खेल ! अभी तू इतना बड़ा नहीं हुआ कि नदी तट पर जाकर खेले। इन सबसे खेलना, पहले खा ले।"

कृष्ण रूठा ही रहता। यशोदा समझा-समझाकर जब हारने लगती तो रुआंसी हो जाती। एक ओर खड़े नंद बाबा हंसते, कहते, "तुम व्यर्थ ही उसे रोकने का प्रयत्न करती हो, यशोदा, भला हवा को कोई बांध पाया है? जलस्रोत हथेली के थामे थमते हैं कहीं? उसे खेलने की आज्ञा दे दो।"

मन मारकर आज्ञा देनी पड़ती उसे, पर जी धक्-धक् करता रहता। कन्हैया भोजन करते ही वायुवेग से बाहर निकल भागता। यशोदा चिंताग्रस्त बैठी रह जाती।

नन्द सांत्वना देते, "देवी, बालक है, फिर बहुत चंचल। भला उसे

घर में कैसे बंद रख सकती हो?"

उत्तर में यशोदा के पास केवल छलछलायी आंखें होती, चिंताग्रस्त चेहरा। पति स्नेह से समझाते, "आश्वस्त रहो, तुम्हारा पुत्र सुरक्षित रहेगा। ईश्वर की कृपा है उस पर।"

यशोदा गहरी सांस लेकर चुप हो जाया करती। इस तरह समय बीत रहा था।

यशोदा को समझा-बुझा देते थे, पर स्वयं के मन भी चिंता लगी रहती। यह चिंता स्त्रियों की नजर लग जाने की नहीं थी, अपितु चिंता थी कि मथुराधिपति कंस किसी न किसी तरह बालक का वध करना चाहते हैं। नन्द का मन होता था कि स्वयं महाराज के सामने उपस्थित होकर कारण पूछें, भरी सभा में उन्हें धिक्कृत करें किंतु वैसा कोई प्रमाण नहीं था। राजा पर दोष लगाना बहुत बड़ा अपराध हो जाता, पर सब जान रहे थे कि कृष्ण की हत्या के जितने प्रयत्न किये गये हैं, वे सब राज्यायोजित हैं, किंतु प्रमाण?

गोप सभा बुलाकर अनेक बार विचार-विमर्श भी किया, किंतु कोई राह नहीं सूझी। बरसाना पास था। वहां से भी गाहे-बगाहे मित्र आया करते। वृषभानु से विशेष मित्रता थी नन्द बाबा की। उन्हीं से परामर्श किया जा सकता था। यही विचार कर निश्चय किया था, बरसाना जाकर वृषभानु से भेंट करेंगे। कन्हैया गोप बालकों के साथ खेलने चला गया, तो नन्द बाबा ने भोजनोपरान्त यशोदा से कहा, "सोचता हूं बरसाना जाकर मित्र वृषभानु से मिल आऊं?"

यशोदा जानती थी वृषभानु से विशेष स्नेह है। मुस्कराकर बोली थी, "अवश्य जाओ, पर सांझ ढले तक लौट आना।"

नन्द गोप ने काली कमरी कन्धे पर रखी और चल पड़े बरसाना की ओर। मार्ग में बालकों को खेलते देखा था उन्होंने। कृष्ण-बलराम भी थे। गौएं चर रही थीं और बालक एकत्र होकर खेलने में लगे थे। धूप चढ़ने से पहले ही तेज-तेज कदम रखते हुए नन्द गोप बरसाना की राह जा पहुंचे।

प्राप्ति वह सब तो जानती थी, जो उस समय मथुरा और राजनिवास मे घटता रहा था, किंतु यह नही जानती थी कि उससे इतर उस बालक के पक्ष में क्या कुछ घट रहा है। समाचार मिला करता था सेविका से। गोकुल वासिनी थी वह। कृष्ण को लेकर बहुत कुछ बतलाया-सुनाया करती। उसी ने कहा था, "देवी, यशोदा के कन्हैया का वध करना तो दूर उसका बाल बांका करना भी कठिन है। महाराज व्यर्थ ही प्रयत्न कर रहे है। वह साकार होकर भी निराकार जैसा लगता है। साक्षात् मोहधारी होते हुए भी निर्मोह।"

"सो कैसे?" प्राप्ति इधर-उधर देखती। इस तरह पूछती जैसे चोरी कर रही हो। जाने क्यो यही चोर भाव अनुभव होने लगा था राजनिवास मे। महाराज कंस के प्रति पूर्ण समर्पित होते हुए भी लगता था कि कृष्ण को लेकर जो कुछ सुनाती-बतियाती हैं, वह सब अपरोक्ष रूप से राजद्रोह हो जाता है। अनेक बार अपने-आप को थामना भी चाहा था उन्होंने। न पूछें प्रश्न, न करें जिज्ञासा, किंतु विचित्र स्थिति थी। बालक को लेकर वातावरण में जो अलौकिक कथाएं बिखरी हुई थी, वह उसे लेकर जानने, समझने और सुनने को उकसाया करती।

सेविका का गोप-बन्धु प्रतिदिन वृदावन से मथुरा आकर दूध-दधि

लाया करता था। वही सब कुछ सुनाता। इस तरह जैसे कृष्ण ने जादू कर दिया हो और ऋतु नामक वह सेविका सुनती भी उसी तरह मंत्रमुग्ध होकर, आकर स्वामिनी को सुना देती।

उसी से कृष्ण को लेकर बहुत कुछ सुनने-जानने को मिला था। कैसा है रूप-रंग। कैसी है देह। कैसा स्वर है और क्या-क्या विशिष्टताएं हैं। ऋतु ने इस तरह सुनाया था जैसे किसी श्लोक का उच्चारण कर रही हो। स्वर, संगीत और लय से घुलामिला स्वर्गिक अनुभव देता हुआ श्लोक! प्राप्ति को लगा था कि सचमुच किसी अदृश्य लोक के चमत्कार का वर्णन सुन रही है। जिसके श्रवण मात्र से ऐसा सम्मोहन है, वह साक्षात् कैसा होगा!

और मथुराधिपति हैं कि उसी सम्मोहन को षड्यन्त्रों से मिटा डालना चाहते हैं। ऋतु ने ही प्राप्ति को सुनायी थी अघासुर वध की घटना और वही क्यों, अनेक घटनाएं। राजनिवास से अघासुर के वृन्दावन प्रस्थान की सूचना मिलते ही प्राप्ति ने सेविका को बुलाकर प्रश्न किया था, "कैसा है तुम्हारा कन्हैया?"

"देवी, हाल ही में एक और चमत्कार किया उसने।" सेविका ने बालक के प्रति श्रद्धायुक्त स्वर में सुनाना प्रारम्भ कर दिया था "यशोदा से लड़-झगड़कर गोप बालकों में खेलने के लिए जा पहुंचा था वह। पिता बरसाना गए हुए थे। तभी वह चमत्कार घटा।"

"कौन-सा चमत्कार?" प्राप्ति ने जान-बूझकर अनजान बनते हुए प्रश्न किया था।

"एक राक्षस जा पहुंचा था गोप बालकों के बीच।" ऋतु बताने लगी थी, "उसी का वध कर दिया उस बालक ने।"

समझ गयी थी प्राप्ति। अघासुर समाप्त हुआ, पर जानने की उत्सुकता थी। किस तरह मारा गया होगा वह दैत्य शक्ति असुर? ऋतु ने संक्षेप में बतलाया था सब। बोली थी, "महारानी, मेरा भाई बतला रहा था कि सारी कहानी गोप बालकों से ही सुनने को मिली। बड़ा तो

कोई था ही नहीं। बालक पशुधन के साथ वन में घूम रहे थे। उन्हीं के साथ था कन्हैया। नन्द बाबा बरसाना से लौटे, तब तक यशोदासुत उस दुष्ट असुर का वध कर चुका था।"

"वही तो, बतला कैसे ?"

"जो सुना वही सुनाये देती हूं देवी।" ऋतु बोली थी, "छली था असुर। केवल कन्हैया का ही नहीं सम्पूर्ण गोपों का जीवनाश्रय समाप्त करने गया था। अपने साथ ले गया था एक विशाल अजगर।"

"अजगर ! सो किसलिए ?"

"गोपों का जीवन तो उनके पशु हैं देवी," ऋतु ने उत्तर दिया था, "उस दुष्ट असुर ने अजगर को इसी विचार से साथ ले लिया था ताकि उस सर्प की कठोर जकड में अनेक गौओं के प्राण चले जाएं और स्वय एक गुफा में छिपकर बैठ रहा। बालक कन्हैया पर दृष्टि लगाए हुए।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? यशोदासुत तो अन्तर्यामी है ना ?" ऋतु ने श्रद्धापूर्वक सुनाया था, "क्षण मात्र में उसने ज्ञात कर लिया कि असुर कहां है और उसने क्या छल संजो रखा है।" सेविका सुनाये चली गयी और प्राप्ति मन्त्र-मुग्ध श्रोता की तरह टकटकी लगाये उसे देखती रही।

वे सब भोजन कर रहे थे। कन्हैया उनके बीचों-बीच। पल-भर पहले पास की पगडण्डी से नन्द बाबा बरसाना की ओर निकल गये थे। जाते-जाते सभी गोपों को हिदायत की थी उन्होंने, "सावधान रहना बच्चो, इस निपट वन में जीव-जन्तुओं का भय बहुत है।"

कर संकर्षण ने विनम्रता से कहा था, "आश्वस्त हों, बाबा! हम सभी सतर्क हैं।"

मनसुखा, उद्धव, मणिमय और कर संकर्षण। अनेक गोप बालक। विभिन्न आयु, विभिन्न स्वभाव, विभिन्न गुणावगुण, पर सबका आकर्षण केन्द्र सबसे छोटा कन्हैया। वह सभी के भोजन से कुछ न कुछ खाता जाता। सभी की ओर मुस्कानें फेंकता, इठलाता हुआ। दूर एक ओर गौओं का झुण्ड हरी घास चरकर गुफा के पास बैठा जुगाली करता हुआ। इक्का-दुक्का गौएं जहां-तहां इस समय भी घास चर रही थीं। उन्हीं में से कुछ गुफाद्वार की ओर बढ़ गयीं।

वे सब वार्तालाप में व्यस्त थे। मनसुखा ने कहा था, "कन्हैया ने एक बांस छीलकर विचित्र-सा वाद्ययंत्र बनाया है। कहता है, उससे इतनी सुमधुर ध्वनि निकलेगी, जिसके प्रभाव से वह दिशाओं और वातावरण को प्रभावित कर सकेगा। क्यों, कन्हैया?"

"हूं !" कन्हैया ने उत्तर दिया। छोटी-छोटी अंगुलियां साथ लाये गए माखन से लिपटी हुई थीं। भोजन में अन्न कम ले रहा था वह। सीधे-सीधे कभी इस गोप के हिस्से से और कभी उस गोप के हिस्से से माखन लेता, मुंह में डाल लेता। लगता था कि वार्तालाप में कोई रुचि ही नहीं उसकी। यदि कुछ है तो केवल माखन में है।

उद्धव ने प्रश्न किया, "कन्हैया, बताओ तो कौन-सा वाद्ययंत्र है वह ? कहां है ?"

कन्हैया के उत्तरपूर्व मनसुखा पुनः बोल पड़ा, "लटका तो है कमर में, देख लो।"

उद्धव ने दृष्टि डाली। एक लम्बी बांस की डण्डी दीखी उसे। हंसकर कहा, "यह ? यह कैसा वाद्ययंत्र ?"

वे सभी हंसे, मनसुखा ने कहा, "ऐसा ही है।"

"पर इसका स्वर तो सुना नहीं ? बजाकर बतलाओ ना कन्हैया ?" उद्धव ने जिद की।

कन्हैया ने कुछ हकलाते स्वर में उत्तर दिया, "अभी नहीं, यह पूरी तरह बना थोड़े ही। जब अंत आयेगा, तब सुनना। मैं स्वयं सुनाऊंगा तुम लोगों को। एक गोप ने कमर पर हाथ डाल दिया। कन्हैया ने झुंझलाकर कहा, "परे हटा हाथ। उसे छूना मत।"

सहमकर उसने हाथ हटाया। सहसा कन्हैया की दृष्टि कहीं और जा टिकी। लगा कि वह गौओं को देखने लगा है। माखन से रुचि हट गई।

"कन्हैया !" उद्धव ने उसे पुकारा, पर कन्हैया ने जैसे सुना ही नहीं। उठा और तेजी से उस ओर चल पड़ा, जिधर गौएं बैठी थीं और कुछ गुफा-द्वार में समा चुकी थीं। कर संकर्षण ने जोर से पुकारा उसे, "कान्हा ! कहां चला रे ?"

"आता हूं भइया, अभी आता हूं।" कहता हुआ वह आगे बढ़ता गया। वे सब भोजन छोड़कर कन्हैया को उस दिशा की ओर जाते देखने लगे।

सहसा कर संकर्षण लपके थे उसकी ओर। चीखते हुए, "रुक जा कान्हा। उस गुहा में कहां जा रहा है? देखता नहीं, कितना सघन अन्धकार है भीतर?" फिर उन्होंने कृष्ण को लपक भी लिया। बांह थामकर टोका था, "न जाने उनमें कितने विषधर जीव-जन्तु होंगे। मत जा।"

"पर भइया, बहुत-सी गौएं चली गयी हैं उसमें और वह···यह देखते हो?" कृष्ण ने संकेत किया था, "मुझे लगता है कोई नाग है भीतर···।" शब्द पूरे भी नहीं हो पाये थे कि अजगर ने जोर की श्वास ली। लगा था कि हवा किसी रस्सी की तरह उनके पास तक सरकती हुई पहुंची, फिर लौटने लगी। पांव उखड़ने लगे थे उनके। अन्य गोप बालक भी इस बीच एकत्र हो गए थे। सभी चकित, सभी भयग्रस्त। अनेक आशंकित स्वर उठे, "रुको कन्हैया, कहीं कोई छल न हो इसके पीछे।"

किन्तु इस बीच कृष्ण ने अवसर पाकर बलराम से बांह छुड़ायी और लपककर गुफा के भीतर समा गये।

"कन्हैया! कन्हैया!" अनेक बालकों के स्वर उठे, फिर भयग्रस्त होकर वे गुफा द्वार को देखने लगे, जिस पर अब कन्हैया नहीं, केवल सन्नाटा दीख रहा था। कन्हैया गहन अंधकार में घुसकर गायब हो चुका था। सभी के हृदयों की धड़कनें बढ़ गयीं। आशंकाग्रस्त होकर रुआंसे हो आये। कर संकर्षण तीव्रगति से गुफा की ओर बढ़े। छोटे भाई की दुस्साहपूर्ण चेष्टा ने उन्हें बौखला दिया था, किन्तु गुफाद्वार तक पहुंचते-पहुंचते उन्होंने कृष्ण को बाहर की ओर आते देखा। वह पसीने से सराबोर था, पर होंठ मुस्कान में रंगे हुए। पीछे-पीछे गौएं चली आ रही थी।

"क्या था भीतर?" कर संकर्षण ने प्रश्न किया।

कन्हैया ने पीताम्बर से मुंह पोछा, उत्तर दिया, "कुछ नहीं, एक दुष्ट अजगर था। उसके साथ एक असुर। दोनों ही मर गये।"

"क्या!" इस बीच गोप बालक भी एकत्र हो आये थे। हक्के-बक्के-से खड़े गुफाद्वार की ओर देख रहे थे। कन्हैया ने कहा था, "अब चलो, व्यर्थ

ही यहां खड़े रहने से क्या लाभ ? वह पशुभक्षी तो मर चुका है !…" इसके पूर्व कि कोई कुछ कह पाये, वे सब तीव्रगति से लौट पड़े…गायों को साथ लिये।

परस्पर देर तक बातचीत नहीं हुई थी। तभी सकपकाये-से कभी गुफा को देखते, कभी कन्हैया को…जोए कदम सहज चाल में आगे-आगे चला जा रहा था ''एक वही था जो हल्की-फुल्की बातें भी कर रहा था…पर उनमें से सब मन से भारी हो उठे थे !

एक बार पुनः गोकुल-वृन्दावन में हलचल हुई। कन्हैया तो सदा की तरह स्वाभाविक बना रहा, पर सारी बस्ती अस्वाभाविक स्थिति झेलने लगी। यशोदा ने उसे बांहों में भर रखा था। गोप पुरुष और स्त्रियां बालकों से कन्हैया का नाग-कौतुक सुन नंद के निवास पर एकत्र हो गये थे। कर' संकर्षण शान्त भाव से एक ओर बैठे हुए। वे तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कभी कहते कि यह कंस की एक और दुश्चेष्टा है, कभी कहते कि मात्र संयोग है, पर एकमात्र कृष्ण ही थे, जिन्होंने न कुछ कहा, न सुना।

बरसाना से लौटकर आये नन्द गोप ने घर पर गोपों की भीड़ एकत्र देखी। कुछ घबरा उठे थे, किन्तु जब सब कुछ सुना, तब लगा कि एक बार पुनः कृष्ण कंस के षड्यंत्र से बच गये हैं।

यशोदा एकांत पाते ही झगड़ पड़ी थी उनसे, "देखो, तुम कहते थे कि बालक को जाने दूं ? और जाते ही यह सब हो गया।"

नन्द चुप थे। उससे कहीं अधिक चिन्तित। समझ चुके थे कि कृष्ण इस क्षेत्र में सुरक्षित नहीं। आये दिन किसी-न-किसी रूप में विपदा आती ही रहती थी। बरसाना में भी यही कुछ पूछा-जाना था वृषभानु से। उनका

कहना भी था कि कृष्ण को किसी अन्य स्थान पर भेज दो।

किन्तु कहा भेजें? सारी रात्रि सो नही सके। एक वही क्यों, यशोदा भी उनींदी, पर जागृत रही। समूची वस्ती मे रह-रहकर उसी घटना का स्मरण होता रहा। निश्चित हो चुका था कि कृष्ण वृन्दावन क्षेत्र मे रहकर तनिक भी सुरक्षित नही है।

प्राप्ति को स्मरण है कि अघासुर वध ने मथुराधिपति को किस तरह अस्त-व्यस्त कर डाला था। केशी और प्रद्युम्न को बुरी तरह धिक्कारा था उन्होंने, पर सबसे चौंकाने वाली सूचना उन्हें यह मिली थी कि कृष्ण-बलराम अब वृन्दावन या गोकुल क्षेत्र में कहीं नहीं हैं।

"तब कहां गये ?" राजा उत्तेजित स्वर में चीख पड़े थे।

सेनापति और महामंत्री नतमस्तक होकर सामने खड़े थे। उत्तरहीन। जैसे-तैसे बोल सके थे वह, "कहते हैं कि नन्द गोप ने अपने विश्वस्त व्यक्तियों की सहायता से उन्हें अन्यत्र भिजवा दिया है।"

"किन्तु कहां ?" कंस का प्रश्न पुनः कौंध गया था। ऐसे जैसे बिजली कड़की हो।

"यह तो ज्ञात नहीं हो सका, राजन्," महामंत्री ने उत्तर दिया, "पर [illegible]"

बालक कृष्ण से जुड़ी घटनाओं ने उन्हें भयभीत कर दिया है। भयभीत या कि भयातुर? किन्तु महाबली कंस और भय? इनकी एक साथ कल्पना बहुत विचित्र लगती थी। कुछ-कुछ अस्वाभाविक। किन्तु शीघ्र ही समझ लिया था प्राप्ति ने। यही स्वाभाविक है। स्वाभाविक ही नहीं, सत्य!

उस समय कितना झुठलाया करती थी अपने-आप को? ऐसे न सोचें। पति वीर हैं, दूर-दूरंत उनके पराक्रम की चर्चाएं होती हैं, स्तुतियां गायी जाती हैं। भला यह भयग्रस्त कैसे हो सकते हैं? कंस और भय का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं!

पर सम्बन्ध था। जल्दी ही इस सत्य को समझ लिया था प्राप्ति ने। कृष्ण-बलराम को लेकर गुप्तचर कुछ भी ज्ञात नहीं कर सके। कैसे ज्ञात होता? लगता था कि गोपों को भी कुछ ज्ञात नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात है कि अघासुर वध के तुरन्त बाद नंद गोप कृष्ण-बलराम को लेकर किसी अज्ञात स्थान की यात्रा पर चल पड़े थे। जब लौटे, तब उनके साथ दोनों बालक नहीं थे।

कहीं किसी विश्वस्त के पास छोड़ दिया गया था उन्हें और कंस थे कि इस अजानी स्थिति से हर क्षण भयग्रस्त होते हुए। लगता था कि कोई रोग उन्हें लग गया है। शरीर और मन को तिल-तिल जलाता हुआ।

गुप्तचरों को लगातार दौड़ाया जा रहा था। कभी यहां-कभी वहां। कहीं किसी जगह से सूचना मिले। पर बरस बीतने लगे थे, कोई सूचना या संकेत नहीं। ऋतु भी कुछ नहीं जानती थी। प्राप्ति ने कुरेद-कुरेदकर जान-पूछ लिया था। सबकी तरह एक ही समाचार था उसके पास। वे कहीं नहीं हैं। उन्हें लेकर नन्द गोप के अतिरिक्त किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं

है। यहां तक कि माता यशोदा को भी खबर नहीं है। किन्तु जहां भी है वे, सुरक्षित है।

और उनका होना महाराज कंस की घोर असुरक्षा है। तभी सूचना मिली थी। महीनों बाद लौटा एक गुप्तचर वह सूचना लाया था। केशी तक अर्द्धरात्रि को उसकी अगवाई का समाचार सुनाया गया और सेनापति उसी समय महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए। प्राप्ति को वह दिन याद है।

मथुराधिपति विश्राम के लिए पलकें झपकने को ही थे कि द्वार पर हलकी आहट हुई। झपकी पलकें खुल गयीं। प्राप्ति ने उस ओर देखा। सेविका सिर झुकाये हुए उपस्थित हुई।

"क्षमा करें, देवि," सेविका ने थर्राते, सहमे शब्दों में निवेदन किया था, "सेनापति इसी क्षण उपस्थिति की आज्ञा चाहते है।"

प्राप्ति ने बेबसी के साथ पति की ओर देखा। महाराज कंस उठ पड़े थे। प्राप्ति कुछ कहे, इसके पूर्व ही बोल पड़े थे वह, "उनसे कहो, आते हैं।"

"जो आज्ञा देव।" दासी चली गयी।

कंस ने पत्नी की ओर मुड़कर भी नहीं देखा था। तीव्रगति से भेंट कक्ष की ओर चल पड़े। महारानी सहमी चाल में उनके पीछे-पीछे गयीं।

केशी राजा को सामने पाते ही उठ खड़े हुए। क्षमायाचना के साथ निवेदन किया, "सूचना ही ऐसी थी राजन्, कि मुझे इस अनुचित अवसर पर उपस्थित होना पड़ा।"

"कहो, क्या बात है?"

केशी ने साथ खड़े हुए व्यक्ति की ओर देखा और बोला, "यह गुप्तचर

सूचना लाया है मथुराधिपति, कृष्ण-बलराम संदीपनि के आश्रम में थे। अब वह शीघ्र ही जनपद क्षेत्र की ओर लौटने वाले हैं।"

"संदीपनि के आश्रम में!" चकित हुए कंस, फिर प्रसन्नता व्यक्त की। कहा, "इसे उपयुक्त पुरस्कार दो, सेनापति, और कल सभा में उपस्थित रहो। सभा के पश्चात् विचार करेंगे, कि उन दुष्ट गोप बालकों का क्या किया जाये?"

"जैसी आपकी इच्छा महाराज!" सेनापति ने सिर झुकाया, बाहर निकल गये। कंस पुनः शयन कक्ष की ओर लौट पड़े। प्राप्ति ने पहली ही दृष्टि में समझ लिया था। पति सूचना पाकर जितने प्रसन्न हैं, उससे कहीं अधिक इस चिन्ता में जुड़ गये हैं कि अब कृष्ण-बलराम से किस तरह मुक्ति पा सकेंगे?

राजा शय्या पर पहुंचे, पर मन कहीं और जुड़ा हुआ था। प्राप्ति करवट बदलकर लेट रही थी। बहुत चाहा था, सो जायें, पर लगा था कि वह कंस से जुड़ी हुई है। कंस से भी कहीं अधिक कंस के भयग्रस्त पुरुष से। उस पुरुष से, जिसे बल, पराक्रम, वीरता और नीति के क्षेत्र में दुस्साहसी और वीर कहा जाता था, पर प्राप्ति जान चुकी थी कि यह वीरता, सच में कायरता पर लिपटा हुआ आवरण है। सोचकर जितना दुख होता था, उससे कहीं अधिक क्लेश। अपने पर ही चिढ़ आती थी उन्हें।

चिढ़ी उस दिन भी थी। हर उस पल चिढ़ से भर जाती हैं, जब कंस की वीरता की चर्चा की जाती है। महाराज जरासन्ध ने, जब दोनों बहनों का सम्बन्ध मथुराधिपति कंस से निश्चित किया, उस समय भी वीर ही कहा था उन्हें! बोले थे, "मथुराधिपति कंस महावीर हैं। अभूतपूर्व साहस,

बल और पराक्रम के धनी। निस्संदेह उन जैसा वर पाकर हमारी पुत्रियां गौरवान्वित होंगी। उससे कहीं अधिक गौरवशाली होगा मगध साम्राज्य, जिसके जामाता रूप में कंस उसकी शक्ति, वैभव और सम्पन्नता में वृद्धि के कारण बनेंगे।"*

कंस को लेकर बहुत कुछ सुना-जाना था प्राप्ति ने। जितना सुना-जाना था, उससे प्रसन्न होती थी। वह वीरपत्नी बनने जा रही है। महाशक्ति की पुत्री, महाशक्ति की भार्या। कैसी सौभाग्यशालिनी हैं प्राप्ति!

किन्तु मथुरा में कुछ समय रहने के बाद ही समझ लिया था कि वह केवल राजनीति की बलिवेदी पर बलि दी गयी एक स्त्री है। इससे अधिक कुछ नहीं। पति की समूची शक्ति, वीरता, साहस और पराक्रम केवल छल है, वीरत्व नहीं। वस्तुसत्य है कायरता। कायरता न होती, तो उन अबोध बालकों के भय से कंस इतने उद्विग्न, भयभीत और चिन्ताग्रस्त रहते?

निस्सन्देह कायर! केवल उसी रात्रि नहीं सोचा था प्राप्ति ने। बहुत बार सोचा, विचार का नीर-क्षीर किया और अंत में यही निर्णय मिला, कंस कायर है, भयभीत और कमजोर पुरुष।

इस विचार के साथ ही बहुत बार प्राप्ति के भीतर बहुत अरुचि उत्पन्न हुई थी मथुराधिपति के लिए, किन्तु पत्नीधर्म ने शब्द, इच्छा, मन, चेष्टा यहां तक कि विचार भी बंदी बना लिये थे। अब यही बंदी भाव भोगते जाना

---

* "पिता का राज्य पाकर जरासंध भी अपने पराक्रम और बाहुबल से सब राजाओं को वश में करके एकछत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। उसी समय मथुरा का राजा कंस, जरासंध का मित्र और संबंधी हो गया।" : महाभारत, सभापर्व, अध्याय १८, श्लोक-क्रम १८ से २२। सिद्ध है कि जरासंध ने कंस से अपनी पुत्रियों का विवाह राजनीति की दृष्टि से किया। कंस ने भी यह संबंध उसी अर्थ में स्वीकारा।

प्राप्ति की नियति !

मन डराता था। कायर कभी नहीं जीते। जीते भी रहें तो मृतवत् जीते हैं। और प्राप्ति आज अनुभव करती है कि कंस केवल उसी समय नहीं मरे, जब कृष्ण ने उन्हें मारा था, अपितु वह तो बहुत बार मृत हुए। यही नहीं, हर उस क्षण मृतवत् ही थे, जब बालकों को लेकर प्रतिपल भयग्रस्त रहते थे। छाया तक से भय लगने लगा था उन्हें। किसी व्यक्ति पर तनिक-सा संदेह होते ही उसे अपदस्थ कर दिया करते थे। हर क्षण सत्ता से विरत हो जाने का डर उन्हें व्यग्र और असहज बनाये रहता था।

व्यग्र या भयभीत ? भयभीत शब्द ही उचित होगा। ऐसे लोग भयभीत और कायर तो होते ही हैं, जो प्रतिपल आशंकित रहते हों और कंस वही थे।

कृष्ण द्वारा कंस का वध किये जाने के बाद वैधव्य का श्वेत सन्नाटा भोगती हुई दोनों बहनें मगध लौटीं, तो जरासंध केवल उद्विग्न ही नहीं हुए थे, अपितु उत्तेजना और क्रोध में कांप उठे थे। वह क्षण इस समय भी प्राप्ति को याद है। पिता ने उन्हें हृदय से लगाकर परे करते ही घनगर्जना की थी, "उन दुष्ट गोप बालकों को ही नहीं, सम्पूर्ण मथुरा को इस कुकृत्य का परिणाम झेलना होगा। मथुरा का नाश कर डालेंगे हम।"

और फिर नाश की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। एक के बाद एक मथुरा पर प्रहार किये जाने लगे थे। प्रहारपूर्व जबरदस्त तैयारियां की जाती थीं। प्राप्ति का मन होता था कि पिता को टोके, "इस सबसे हमारा सौभाग्य तो नहीं लौट सकेगा, पूज्य पिता, आप शांत हों।"

पर लगता था कि यह कहकर पिता को अधिक उत्तेजित कर देंगी। फिर अस्ति का विचार आता। वह पति-वध के कारण विचित्र-से हिंस्र भाव में भरी हुई थी। घायल बाघिन की तरह। जब-जब महाराज कंस को लेकर उससे चर्चा होती थी, तब-तब प्राप्ति को लगता था कि अस्ति की मनःशांति बालक कृष्ण और बलराम के वध से ही होगी।

एक-दो बार तर्क-वितर्क करने की चेष्टा भी की थी प्राप्ति ने। कहा था, "बहिन, इस तरह की चेष्टा से तुम विगत को बार-बार उधेड़ रही हो। जैसे-जैसे प्रतिशोध की ज्वालाएं कौंधेगी, वैसे-वैसे आत्म-कष्ट और पीड़ा सघन ही होगी। वह सब स्मरण आयेगा, जो मथुरा की महारानियों के नाते हमने भोगा है। इस सबको बिसरा देना ही उचित है बहिन, इसी में शांति है।"

"हुह !" अस्ति ने घृणा से मुह बिचका दिया था बहिन की ओर, "यह विचार तुम्हे ही शोभा देते हैं प्राप्ति, मैं राजपुत्री हूं और राजस मेरा स्वभाव है। यह संतो की भाषा तुम्हे ही शुभ हो।"

प्राप्ति ने आगे कुछ नही कहा था। जानती थी कि बहिन से तर्क-वितर्क करके केवल क्लेश और पीडा को ही आमन्त्रित करेगी। चुपचाप अपने कक्ष मे चली आयी थी और कक्ष में आते ही लगता था कि विगत उधेड़ने लगता है। समय बिताने के लिए यहां-वहां जा पहुंचती। इसी तरह पहुच आया करती थी पितृकक्ष की ओर।

जामाता-वध के कारण महाराज जरासन्ध कितने उत्तेजित थे, कितने नही, यह तो नही कहा जा सकता था, किन्तु इतना निश्चित था कि उनके आहत होने का सबमे बड़ा कारण कृष्ण-बलराम की वह दुस्चेष्टा थी, जिसने मगधपति की शक्ति को चुनौती दे डाली थी।

इस चुनौती के लिए और बड़ी चुनौती बनी मथुरा पर जरासन्ध के आक्रमणों की विफलता। एक के बाद अनेक आक्रमण मथुरा के अन्धक, वृष्णि और यादव वंशियों ने असफल कर दिये थे। हर बार मगधराज को मुहतोड़ जवाब मिला था। एक बार पुनः समाचार आया था कि मगधराज का आक्रमण विफल हुआ। प्राप्ति उस समय सभागृह के नारीकक्ष में ही बैठी हुई थी।

सबकुछ अविश्वसनीय लगता है। केवल अविश्वसनीय नहीं, अलौकिक, पर पूर्णतः लौकिक। लौकिक न होता तो इस तरह अपमानित, पराजित और कुंठा भाव झेलते हुए मगधराज जरासन्ध हतप्रभ बैठे रह जाते ? वे बैठे थे। आश्चर्य से होंठ खुले हुए। दृष्टि पथरायी हुई। जो कुछ सन्देशवाहक सुना रहे थे, शब्दशः सुना था उन्होंने, पर लगा था कि समझ नहीं पा रहे हैं। समझने जैसी बात हो तब ना ? भला जरासन्ध जैसे शक्तिसम्पन्न सम्राट् के लिए यह सब समझने वाली बात है ?

किन्तु समझना होगा। केवल समझना ही नहीं, मानना भी होगा। उस अल्पायु किशोर के नेतृत्व में मथुरा के उन अड़े-जकड़े यादव, वृष्णि और अन्धकों ने केवल जरासन्ध की विशाल सेना को उखाड़ ही नहीं दिया है, बल्कि उलीचकर मगध की ओर इस तरह फेंक दिया है, जैसे चुल्लुओं से समुद्र खाली कर दिया हो।

कितने हत हुए, कितने अर्धमृत स्थिति में मथुरा से मगध मार्ग के बीच पड़े रह गये और कितने लौट पाये हैं यह अनुमान करना भी कठिन हो गया है। अद्भुत और अविजेय अस्त्रों से सुसज्जित सेना पलभर के आँधी की चपेट में आकर धूलि-धूसरित हो गयी है। टुकुर-टुकुर देखे जा रहे हैं जरासन्ध। भावहीन। न दृष्टि में भय था, न चेहरे पर चिन्ता। बस, लगता था कि श्वास अटक-अटककर चलने लगी है।

ऐसा अटकाव जरासन्ध के जीवन में कभी नहीं आया। उस समय भी नहीं जब उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी जय करने, स्वप्न में भीष्म की अभूतपूर्व शक्ति को लेकर जानकारियाँ जुटायी थीं, कुओं और पणियों को लेकर सूचना पायी थी। समुद्र-पार यमपुरी को लेकर जाना-समझा था। यह कल्पना भी नहीं की थी कि उन्हें भारत-खंड में ही ऐसी अद्भुत शक्ति और विरोध का सामना करना पड़ेगा। यही नहीं, उस शक्ति से एक-दो बार नहीं निरन्तर पराजय झेलनी होगी।

कितनी बार हुआ है यह सब ? अनायास ... के माथे में प्र

क्रोध आया था। उनके अपने ही भीतर कने उकेरता हुआ एक, दो, तीन, चार, पांच…बहुत बार। संभवतः तेरह, चौदह बार और यह सब भी उस मथुरा से, जिसका रोम-रोम कांप उठता था जरासन्ध का नाम सुनकर। भला ऐसा क्या हुआ कि वही मथुरा का यादव गणसंघ अचानक संजीवनी शक्ति पाकर सम्राट् जरासन्ध के लिए चुनौती बन गया?

मन फिर-फिर अविश्वास से भर उठता है, पर इस अविश्वास को सहेजे रखना मगधराज का कोरा मिथ्याभिमान होगा, यथार्थ नहीं। जो यथार्थ है, वह सामने है। पराजय का एक निरंतर क्रम। इस क्रम ने जरासन्ध को जितना थकाया है, उससे कहीं अधिक अपमानित कर दिया है।

अनजाने ही एक गहरा, उदराता श्वास लिया था विशालदेह सम्राट् ने। जबड़े कस उठे थे, कृष्ण! वसुदेवसुत कृष्ण! इस बालक को हत किये बिना जरासन्ध सहज नहीं हो सकेंगे। सहज ही क्यों, उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी। इस सहजता और शान्ति को पाये बिना जरासन्ध का अहं सन्तुष्ट नहीं होगा। इस सन्तोष से बहुतेक बातें जुड़ी हुई हैं। जरासन्ध की प्रतिष्ठा, सम्मान, राजगरिमा, मगध का अविजित व्यक्तित्व और बहुत सीमा तक विश्व-जय का वह स्वप्न, जिसे जरासन्ध ने मगध का राजसिंहासन सम्हालते ही सजा लिया था। वह सब जरासन्ध का अभीष्ट। एकमात्र लक्ष्य।

दृष्टि उसी भावहीनता को सहेजे हुए रक्तरंजित उन सेना-नायकों को देखे जा रही थी, जो उनके सामने जैसे-तैसे अपने-आप को सहेजे हुए खड़े थे। उदासे, थके और हांफते हुए। सभाभवन में ऐसा सन्नाटा था, जैसे सम्राट् जरासन्ध के अतिरिक्त सब अनुपस्थित हों। केवल शरीर। अनेक राजा थे, अनेक मंत्री, पर सभी ऐसे चुप जैसे अस्तित्व शेष हो गये हों।

सम्राट् जरासन्ध की सेना को हर बार की तरह एक बार फिर पराजय का कांटों-जड़ा मुकुट सिर पर लिए हुए मगध की ओर लौटना

पड़ा है। समाचार बहुत पहले मिल गया था, किन्तु उस समय जरासन्ध ने खौलता लोहा कानों में आ गिरते हुए भी पीड़ा झेल ली थी, किन्तु अब, जब पराजित सेना के नायक सामने उपस्थित हुए हैं, तब यह सब झेल पाना असंभव हो गया है। विस्फोट होगा। अवश्य होगा। जरासन्ध नहीं सहेंगे। कभी नहीं सह सकेंगे। अचानक वह राजसिंहासन से उठे थे। चौड़ी छाती से वज्र-गर्जना करते हुए शब्द दगे और समूचे सभागृह में बिखर गये—"मथुरा का सर्वनाश करना होगा। उस मूर्ख, दुस्साहसी बालक का संहार करना होगा, जिसने केवल मगध को ही चुनौती नहीं दी है, मगधराज की बेटियों का सौभाग्य-नाश भी किया है।

शब्द गर्जन हुआ और देर तक राजभवन के कूल-कगारे हिलाता-थरथराता हुआ गूंजता रहा। आहत, पराजित और रक्तरंजित सेनानायकों को उपचार के लिए जाने का आदेश दिया गया। सभाभवन में किसीको न आने की हिदायतें हुईं और मगधराज ने विशेष मन्त्रियों को रुकने के लिए कहकर अन्य सभी को जाने की आज्ञा दी।

सन्नाटा और गहरा हो गया। इस सन्नाटे के साथ-साथ जरासन्ध की क्रोधाग्नि और तीव्र हुई। अपने ही भीतर झुलसते-जलते मगधराज कुछ पल वर्तमान के लावे से बाहर आने की चेष्टा करते रहे, फिर होंठ भींचते हुए उन्होंने मंत्रियों की ओर दृष्टि उठायी, धीमे, किन्तु सधे शब्दों में प्रश्न किया, "यह"'यह सब कैसे हो रहा है, मंत्रिगण, मैं तो समझ भी नहीं पा रहा हूं?"

मंत्रियों ने परस्पर देखा, फिर उनमें से सर्वाधिक वृद्ध और मुखर मंत्री उठे। मगधराज जरासन्ध ही नहीं, उनके वीर पिता बृहद्रथ के समय

से राजनीतिक-सामरिक उलटफेरों को देखा भोगा था उन्होंने। नाम—सत्यव्रत। कहा था, "इसमें अद्‌भुत और अलौकिक जैसा कुछ भी नहीं है राजन्, वसुदेव का पुत्र मात्र योद्धा ही नहीं, कुशल राजनीतिज्ञ भी है। जितनी सूचनाएं मिली हैं, उनके अनुसार यादव गणसंघ के परस्पर झगड़ों को मिटाकर उसने उन्हें सफलतापूर्वक संगठित कर लिया है। यही नहीं, अनेक ऋषि-मुनि भी उसने अपनी श्रद्धा और पूजा से वश में कर रखे हैं। वह बहुत त्वरित-बुद्धि है, महाराज, साम, दाम, दंड, भेद सभी में पारंगत। उस पर जय के लिए मात्र सैन्यशक्ति काफी नहीं है। उसे युक्तिपूर्वक पराजित किया जा सकता है, युद्ध-भर से नहीं।"

जरासन्ध ने सुना—अच्छा नहीं लगा। किस युक्ति की बात कर रहे हैं वृद्ध मंत्री, चिढ़ हो आयी थी उन्हें।' कहा, "वृद्धवर, देखता हूं कि समय के साथ-साथ आप मंत्री से अधिक उपदेशक होते जा रहे हैं। उस गोप बालक में साम, दाम, दंड, भेद की परख करना आप जैसे थके हुए व्यक्ति के लिए ही संभव है। मुझे लगता है कि अब तक मथुरा पर सम्पूर्ण सैन्य-क्षमता के साथ आक्रमण ही नहीं हो सका, संभवतः इसी कारण मगध को पराजय झेलनी पड़ी है।"

सत्यव्रत ने राजा को देखा, इस तरह जैसे किसी मदान्ध व्यक्ति को सहानुभूति से देखा जाये, फिर आसन पर बैठ रहे। समझ चुके थे कि शक्ति-दंभ में डूबे जरासन्ध से तर्क-वितर्क करना व्यर्थ होगा।

एक बार पुनः चुप्पी बिखर गयी। कुछ क्षण बाद जरासन्ध ने पूछा, "और तुम क्या कहते हो, पौंड्रक?"

"मेरी राय में तो कृष्ण छली और धूर्त है राजन्", पौंड्रक ने विनम्रता-पूर्वक कहा, "यह संयोग मात्र है कि अनायोजित युद्ध में वह मगध की सेना से जय पाता गया है। उचित तो यही होगा कि एक बार पुनः युद्ध किया जाये। इस युद्ध में आप अपने मित्र कालयवन से सहायता लें। वह दक्षिण दिशा से मथुरा की ओर बढ़े और मगध की सेना पश्चिम की ओर

पड़ा है। समाचार बहुत पहले मिल गया था, किन्तु उस समय जरासन्ध ने खौलता लोहा कानों में आ गिरते हुए भी पीड़ा झेल ली थी, किन्तु अब, जब पराजित सेना के नायक सामने उपस्थित हुए हैं, तब यह सब झेल पाना असंभव हो गया है। विस्फोट होगा। अवश्य होगा। जरासन्ध नही सहेंगे। कभी नही सह सकेंगे। अचानक वह राजसिंहासन से उठे थे। चौडी छाती से वज्र-गर्जना करते हुए शब्द दगे और समूचे सभागृह में बिखर गये— "मथुरा का सर्वनाश करना होगा। उस मूर्ख, दुस्साहसी बालक का संहार करना होगा, जिसने केवल मगध को ही चुनौती नही दी है, मगधराज की बेटियो का सौभाग्य-नाश भी किया है।

शब्द गर्जन हुआ और देर तक राजभवन के कूल-कगारे हिलाता-थरथराता हुआ गूंजता रहा। आहत, पराजित और रक्तरंजित सेनानायकों को उपचार के लिए जाने का आदेश दिया गया। सभाभवन में किसीको न आने की हिदायतें हुई और मगधराज ने विशेष मंत्रियो को रुकने के लिए कहकर अन्य सभी को जाने की आज्ञा दी।

सन्नाटा और गहरा हो गया। इस सन्नाटे के साथ-साथ जरासन्ध की क्रोधाग्नि और तीव्र हुई। अपने ही भीतर झुलसते-जलते मगधराज कुछ पल वर्तमान के लावे से बाहर आने की चेष्टा करते रहे, फिर होंठ भींचते हुए उन्होंने मंत्रियों की ओर दृष्टि उठायी, धीमे, किन्तु सधे शब्दों में प्रश्न किया, "यह'''यह सब कैसे हो रहा है, मंत्रिगण, मैं तो समझ भी नहीं पा रहा हूं ?"

मंत्रियो ने परस्पर देखा, फिर उनमे से सर्वाधिक वृद्ध और मुखर मंत्री उठे। मगधराज जरासन्ध ही नही, उनके वीर पिता बृहद्रथ के समय

से राजनीतिक-सामरिक उलटफेरों को देखा भोगा था उन्होंने। नाम—सत्यव्रत। कहा था, "इसमें अद्भुत और अलौकिक जैसा कुछ भी नहीं है राजन्, वसुदेव का पुत्र मात्र योद्धा ही नहीं, कुशल राजनीतिज्ञ भी है। जितनी सूचनाएं मिली हैं, उनके अनुसार यादव गणसंघ के परस्पर झगड़ों को मिटाकर उसने उन्हें सफलतापूर्वक संगठित कर लिया है। यही नहीं, अनेक ऋषि-मुनि भी उसने अपनी श्रद्धा और पूजा से वश में कर रखे हैं। वह बहुत त्वरित-बुद्धि है, महाराज, साम, दाम, दंड, भेद सभी में पारंगत। उस पर जय के लिए मात्र सैन्यशक्ति काफी नहीं है। उसे युक्तिपूर्वक पराजित किया जा सकता है, युद्ध-भर से नहीं।"

जरासन्ध ने सुना—अच्छा नहीं लगा। किस युक्ति की बात कर रहे हैं वृद्ध मंत्री, चिढ़ हो आयी थी उन्हें।' कहा, "वृद्धवर, देखता हूं कि समय के साथ-साथ आप मंत्री से अधिक उपदेशक होते जा रहे हैं। उस गोप बालक में साम, दाम, दंड, भेद की परख करना आप जैसे थके हुए व्यक्ति के लिए ही संभव है। मुझे लगता है कि अब तक मथुरा पर सम्पूर्ण सैन्य-क्षमता के साथ आक्रमण ही नहीं हो सका, सम्भवतः इसी कारण मगध को पराजय झेलनी पड़ी है।"

सत्यव्रत ने राजा को देखा, इस तरह जैसे किसी मदान्ध व्यक्ति को सहानुभूति से देखा जाये, फिर आसन पर बैठ रहे। समझ चुके थे कि शक्ति-दंभ में डूबे जरासन्ध से तर्क-वितर्क करना व्यर्थ होगा।

एक बार पुनः चुप्पी बिखर गयी। कुछ क्षण बाद जरासन्ध ने पूछा, "और तुम क्या कहते हो, पौंड्रक?"

"मेरी राय में तो कृष्ण छली और धूर्त है राजन्", पौंड्रक ने विनम्रता-पूर्वक कहा, "यह संयोग मात्र है कि अनायोजित युद्ध में वह मगध की सेना से जय पाता गया है। उचित तो यही होगा कि एक बार पुनः युद्ध किया जाये। इस युद्ध में आप अपने मित्र कालयवन से सहायता लें। वह दक्षिण दिशा से मथुरा की ओर बढ़े और मगध की सेना पश्चिम की ओर

से यादवों की घेराबन्दी करे। इस तरह या तो कृष्ण और उसके समर्थक उत्तर की ओर भागकर प्राणरक्षा करेंगे अथवा वे मथुरा को बचाने की चेष्टाओं में ही प्राण दे देंगे।"

जरासन्ध ने ध्यान से सुना। पौंड्रक की मीठी चाटुकारिता से भरी बात ने कुछ पल के लिए उसके दंभको सन्तोष दिया फिर। उसने कहा, "नहीं, पौंड्रक, मेरी शान्ति के लिए इतना-भर काफी नहीं है। मैं कृष्ण और कर सकर्पण (बलराम) की समाप्ति चाहता हूं। मुझे मथुरा गणसंघ को जय करना-भर सन्तोष नहीं दे सकेगा। मैं उसी क्षण शान्ति पा सकूंगा, जब अपने जामाता कंस के हत्यारे का संहार कर दूं। मेरी स्नेहिल पुत्रियों को भी इसी से सुख प्राप्त होगा।" अनायास ही जरासन्ध के स्वर में विचित्र-सी कड़वाहट उभर आयी थी। ऐसे जैसे उनके मुह से निकले शब्द विष से लिपटे हुए हों, प्राणांतक विष।

"जैसी आपकी इच्छा राजन्", पौंड्रक ने पुनः कहा, "आप वही कीजिये। अपने मित्र और समर्थक वीर कालयवन की सहायता इस दृष्टि से भी उपयुक्त रहेगी। आपकी विशाल सेना जिस क्षण मथुरा की ओर बढ़ेगी, उसी समय कालयवन अपने असंख्य सैन्यबल को साथ लिए हुए दक्षिण से मथुरा की ओर प्रस्थान करेंगे। अपने-आपको युद्ध में असमर्थ पाकर निश्चय ही मथुराधिपति उग्रसेन, कृष्ण, बलराम आदि मथुरा से पलायन करेंगे और कालयवन वायुगति से निरतर उनके पीछे बढते जायेंगे। आपकी चाहना पूर्ण होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

जरासन्ध के चेहरे पर प्रसन्नता की एक झलक उभरी। कहा, "मैं तुम जैसा मित्र और मंत्री पाकर प्रसन्न हूं पौंड्रक, तुमने उचित ही कहा है। कालयवन निस्सन्देह ही कृष्ण का वध करने में सफल होगा।" जरासन्ध आश्वस्त होकर उठ पड़े। पौंड्रक उनके पीछे हो लिया।

शेष सभी मंत्रियों ने सभा से विदा ली।

मन में विषाद है या पीड़ा, नहीं जानती थी, पर इतना जान रहीं थी कि जो कुछ हो रहा है, उससे प्रसन्न नहीं रहीं हैं। उलटे मन अधिकाधिक बोझिल होता जाता है।

जरासन्ध को थाम सकती थी। पर वह थमते, इसमें सन्देह है। जामाता वध से कहीं ज्यादा कष्टकर उन्हें मगध की अवहेलना ने उत्तेजित किया था। फिर प्राप्ति को लगता है, केवल यही कारण नहीं था उनके क्रोध का। यह क्रोध कम था, मथुरा को शक्ति-छाया में नियन्त्रित किये रहने का राजकीय स्वार्थ अधिक। कंसवध को उन्होंने मथुरा के यादवों को कुचलने-दबाने का सशक्त तर्क बना लिया था।

राजसभा के विसर्जित होते ही सदा की तरह बोझिल मन-शरीर लिए हुए अपने निवास पर आ पहुंचो। अधिक थक गयी थी। सदा की तरह चाहा था कि इस आगत और वर्तमान से मुक्ति पा लें। विचारशून्य होकर शान्त हो जायें, किन्तु असंभव हुआ।

और जब वर्तमान विसराना असंभव है, तब विगत कैसे बिसराया जा सकता है? विशेषकर उस स्थिति में जबकि यह वर्तमान उस विगत की धरती पर ही खड़ा हो और विगत का अर्थ है, कंस स्मरण! पलकें मूंद लेनी चाही। यह भी चाहा था कि किसी तरह बेसुध हो जाये, पर लगा कि न बेसुध होना वश में है, न पलकें मूंदकर विस्मृति से साक्षात्कार कर पाना! पुनः उसी स्मरण-क्रम से जा जुड़ी, जिसे छोड़ आयी थी।

कृष्ण-बलराम के सन्दीपनि आश्रम पहुंच जाने और वहां से लौटने की सूचना पाकर कितने उग्र हो उठे थे मथुराधिपति? लगता था कि कोई सुप्त ज्वालामुखी था जो इस समाचार ने कुरेद दिया था। सूचना पाते ही विशेष और विश्वसनीय व्यक्तियों की सभा बुलायी गयी थी। कहा था, "वे दुष्ट गोप बालक पुनः जनपद क्षेत्र में आ पहुंचे है और उनसे मुक्ति पाये बिना मथुरा राज्य में सुख-शान्ति नहीं रह सकेगी।"

प्राप्ति ने भी सुना था। लगा कि मन विद्रोह करना चाहता है। इच्छा यह भी हुई थी कि कह दें, "नहीं, उन बालकों से राज्य की सुख-शान्ति को तनिक भी भय नहीं है। यह भय आपका अपना है। मन स्वच्छ कर लीजिये, भय स्वाभाविक रूप से परे हो जायेगा !" किन्तु कहा नहीं। जानती थी कि पति अपने विरुद्ध मत कभी नहीं सहते या कि सहनशीलता उनका स्वभाव ही नहीं है।

चाटुकार सेनापति, मंत्री और कुछेक सभासद् पूर्ववत् चाटुकारिता करने में जुटे हुए थे। एक बोला था, "आप आश्वस्त हों, महाराज, इस बार वे दुष्ट नन्द पुत्र जीवित नहीं रह सकेंगे।"

किसी अन्य ने कोई और टिप्पणी की। अर्थ यही, शब्द अलग।

महाराज बोले थे, "तब शीघ्र ही ज्ञात करो, गोकुल-वृन्दावन क्षेत्रों में क्या हो रहा है ? वे बालक कब जनपद में प्रवेश करने वाले हैं ?"

"जैसी आज्ञा, महाराज !" केशी ने शीश झुकाया। मथुराधिपति उठ पड़े। उन सभी ने अभिवादन किये, फिर अपनी-अपनी राह ली।

अगले कुछ ही दिनों में एक बार पुनः मथुरा और समूचा शूरसेन जनपद नयी उथल-पुथल और षड्यंत्रों की राजनीति से भर उठा। केशी ने अगले ही दिन सूचना दी थी कि कृष्ण-बलराम उज्जयिनी से आ पहुंचे हैं।

पर केशी से और पहले प्राप्ति तक सूचना आ पहुंची थी। सेविका ने सब कुछ सुनाया था। यह भी सुनाया था कि यशोदासुत साक्षात् मोहन है। बंसी नामक एक विशेष वाद्ययंत्र भी निर्मित किया है उसने। जब उससे धुन निकलती है, तब समूची दिशाओं में उसकी मोहिनी बिखर जाती है। आयुभेद से परे होकर जीवमात्र इस धुन पर मन से नृत्य कर उठते हैं।

"क्या नाम है उस वाद्ययंत्र का ?" सहज उत्सुकता में प्राप्ति ने प्रश्न किया था।

"बंसी ! सब बंसी ही कहते हैं उसे।" ऋतु बोली थी।

"तूने सुनी है धुन ?"

"नहीं देवी, केवल उसकी मोहिनी का वर्णन सुना है", ऋतु जैसे वर्णनानुभूति से विभोर होकर बोल रही थी, "पर मेरी बड़ी इच्छा है, महारानी, एक बार स्वयं सुनूं ? जब उसका वर्णन मात्र इतना मोहक है तब साक्षात् श्रवण कैसा होगा ?"

"तब जा, कल ही चली जा।" प्राप्ति ने उसे अवकाश दे दिया था, "लौटकर मुझे बताना कि कैसा है कान्हा ? क्या सच ही वह विलक्षण है ? कोई देवशक्ति है उसके पास ? और बंसी का क्या प्रभाव होता है ?"

ऋतु ने सिर झुकाया, महारानी को प्रणाम किया। मथुरा के राज-निवास में विदा ली।

लौटकर ऋतु ने अनेक सूचनायें दी थी नन्दलाल के बारे में। प्राप्ति को आज भी स्मरण है ऋतु का वह चेहरा—लगता था कि विचित्र-सी दीप्ति और आभा लेकर लौटी है ब्रजभूमि से। आंखें चमकती हुई और दृष्टि आकाश-सी अनंत। जिसकी गहराई नाप पाना असंभव। चेहरा विद्युत् किरण की भांति दमकता हुआ और श्वासें किसी मन्दिर की सुगंध सहेजे हुए। आते ही राजशिष्टाचार का निर्वाह करके वह प्राप्ति के चरणों की ओर बैठ गयी थी। बोली थी, "अद्भुत, महारानी, नितान्त वर्णनातीत !"

"क्या हुआ ?"

वह बोल रही थी, किन्तु प्राप्ति को याद है, लगता था कि स्वर श्लोक की तरह गूंज रहे हैं उसके, किसी अन्य लोक की यात्रा करके लौटी है। उसने कहा था, "देवी, उस विलक्षण बालक के दर्शन करना तो दूर, उस क्षेत्र में पहुंचकर ही मुझे नयी अनुभूति हुई। लगता है कि वृन्दावन के लता-पत्र

भी उस मोहिनी से भरे हुए है। वहा की वायु स्वर्गिक हो उठी है और वातावरण सुगंधित। यह सब तो मुझे व्रज क्षेत्र में चरण रखते ही अनुभव होने लगा था, फिर जब मैंने उसे देखा, ओह, कैसे कहूं आपसे ? किन शब्दो मे वर्णन करू उस सबका ? देवी, भाषा इतनी असमर्थ हो सकती है, और शब्द इतने सीमायुक्त मैं तो विचार भी नही कर सकती थी।" वह बड़-बड़ाये जा रही थी। संभवतः भूल ही गयी थी कि वह मगधराज की बेटी और मथुराधिपति की भार्या के सामने बैठी है। संभवतः उन शब्दो के लिए जो अनुभूत हो रहा था ऋतु को उसने उसे अस्तित्वमुक्त कर दिया था। केवल अनुभव ही बनकर रह गयी थी वह। ऐसे जैसे आकारहीन केवल भावना हो।

आकारहीन। केवल अनुभव ! हा, यही कुछ तो लगा था उस दिन प्राप्ति को। यही कुछ देखा-सुना था उस ऋतु में। जो कुछ वह कहे जा रही थी, उस सबको प्राप्ति चित्रवत् अनुभव करने लगी थी। उस सामान्य सेविका के स्वर और शब्दों में वैसा कवित्व कहा से आ गया था ? किस शक्ति ने उसे सहसा सामान्य से असामान्य बना दिया था ?

ऋतु बोली थी, "निस्सन्देह वह अलौकिक है देवी। जिसकी उपस्थिति ने प्रकृति तक को उन्मत्त कर दिया हो, जिसका स्वर मोहिनी की तरह जीवमात्र को प्रभावित कर देता हो, जिसकी मुसकान जीवन के हर दुख को विस्मरण करा देती हो और जिसकी उपस्थिति के बिना मनुष्य जीवनहीनता का अनुभव करने लगता हो, वह क्या लौकिक हो सकता है ? व्रजवासी उसकी श्वास से श्वास पाते हैं, उसके स्वर मे संचालित होते हैं, उसकी रूप-मोहिनी से विस्मृत हो उठते है, उसकी शक्ति से संपन्न है। यह

यशोदासुत सुख, आनंद, तृप्ति, अतृप्ति और विरक्ति का अनंत है !···दर्शन करते ही प्रणाम करने को मन हो आता है । उस बालक के प्रति उमड़ा स्नेह भी श्रद्धा से युक्त होता है, उसके प्रति मोह भी श्रद्धा से पूर्ण ।"

प्राप्ति चमत्कृत होकर सुने गयी थी । क्या सच ही किसी मनुष्य में वह सब हो सकता है जो उस गोप बालक में है ? वह यशोदा का बेटा ही है या कोई और ? अनायास ही प्रश्न कर दिया था उसने, "क्या मायावी है ऋतु ?"

"नहीं, महारानी" ऋतु ने कहा था, "उसे माया ही कह सकते हैं ।"

मन हुआ था कि विश्वास न करे—उस तरह किया भी नहीं था, जिस तरह ऋतु ने कहा-सुनाया था । दासी के प्रति शंकित हो गयी थी मगधसुता । संभवतः ऋतु उस बालक को लेकर केवल इस कारण उतना सब कहे जा रही है, क्योंकि वह स्वयं गोपपुत्री है ! ब्रजबाला । अपने ही नगर-ग्राम और जाति-बंधु के प्रति सहज-सहृदय होना स्वाभाविक है ।

सुनकर भी अनसुना कर दिया था, पर लगा कि बिसरा नहीं सकी हैं । बिसरता कैसे ? राजनिवास में सुबह से शाम तक यशोदा के पुत्र की ही तो चर्चा चलती रहती थी । एक नयी सूचना मिली थी उन्हें । उस विलक्षण बालक ने आते ही एक नया कौतुक और कर दिखाया ।

सूचना लाये थे केशी । महाराज कंस ने प्रश्न किया था, "पराक्रमी कालिय नाग को यमुना से बाहर तक खदेड़ दिया है नन्दपुत्र ने ?"

"किन्तु कालिय नाग तो आश्चर्यजनक गति और शक्ति से सम्पन्न था, सेनापति ।" मथुराधिपति चकित हुए थे । स्वर कुछ सकपकाहट से भर गया था उनका, "यह असंभव कैसे संभव हुआ ?"

"मैं स्वयं भी आपकी तरह विश्वास नहीं कर सका था महाराज, किन्तु जितना सुना, जितनों से सुना वह जानकर ही सूचना देने उपस्थित हुआ हूं ।" केशी ने विनम्र किन्तु लिजलिजे स्वर में उत्तर दिया था—"कालिय नाग से यमुना क्षेत्र को रक्षित करके कृष्ण ने जनपद में बहुत

चर्चा, प्रसिद्धि और लोकप्रियता अर्जित कर ली है देव, यह चर्चा और लोकप्रियता धीमे-धीमे ही सही, किन्तु जन-नेतृत्व की ओर ले जायेगी।"

"जानते हैं हम! पर उससे पहले यह जानना चाहते हैं कि कैसे वह सब संभव हुआ?" मयुराधिपति का प्रश्न कौंधा। "नागवंशी कालिय तो अद्भुत बलशाली था?"

केशी ने सूचना को शब्दवत् सुना दिया था। लगा कि शब्दक्रम ने चित्रित कर दी है, सम्पूर्ण घटना।

नागवंशी कालिय!...उसे लेकर प्राप्ति की बहुतेक सूचनाएं पहले ही मिल चुकी थी। केशी के शब्द-वर्णन से पूर्व, कालिय नाग उसी समय व्रजक्षेत्र में आ पहुंचा था, जब कि कृष्ण-बलराम संदीपनि के अवन्ती स्थित आश्रम में थे।

सभा में ही चर्चा आई थी उसकी। महामंत्री प्रद्युम्न ने सूचना दी थी, "राजन्, भोगवतीपुरी का कालिय नाग मथुरा क्षेत्र में आ पहुंचा है और वह वृन्दावन के पास यमुना और आसपास के क्षेत्रों में निर्द्वंद्व घूमता रहता है। उसके आतंक से अनेक लोग प्रभावित हुए हैं। वह दुष्ट नाग यमुना के तटक्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा अपने भय और हिंसात्मक चेष्टाओं के कारण दबाये हुए है। उस ओर, जिस ओर उसका सीमाक्षेत्र बन गया है, ग्रामवासी स्त्री-पुरुष आने-जाने से डरते हैं। वह अनेक का वध कर चुका है। अनेक उसके विषमय प्रहारों के कारण शारीरिक रूप से लगभग मृत हो चुके हैं, बहुतेक विकलांग। इस दुष्ट नाग ने जनवासियों का जीवन असहज बना दिया है।"

महाराज कंस ने कालिय नाग के यमुना तटवर्ती क्षेत्र की जानकारी ली

थी। कुछ पल सोचते रहे, फिर एक क्रूर मुसकराहट उनके होंठों पर घिर आयी थी। कहा था, "महामंत्री, उस नाग को उसी क्षेत्र में रहने दो।"

"किन्तु राजन्, वह जन-क्षेत्र है।" प्रद्युम्न चकित हुए थे। विचित्र निर्णय था राजा का। कहा था, "वहां बडी संख्या मे गोप रहते हैं। उनके स्त्री, बालक, पशुधन सभी को उस विषधर से भय है। वे सब असुरक्षित हो जायेंगे।"

प्राप्ति ने भी सुना था। यादवराज का निर्णय उसे भी असहज और *अन्यायपूर्ण लगा था। क्या कंस उस दुष्ट नाग की शक्ति के कारण कतरा* रहे हैं, किन्तु महाशक्तिशाली कंस के सामने वह नाग कितना ही शक्तियुक्त क्यों न हो, कमजोर ही था। नहीं, यह कारण नहीं। प्राप्ति सोचने लगी थी। अवश्य कोई और कारण है। नीतिज्ञ कंस के इस निर्णय का कारण शक्तिहीनता और असमर्थता तो तनिक भी नहीं।

तब क्या हो सकता है कारण? और कारण को लेकर अधिक माथा-पच्ची नहीं करनी पड़ी थी प्राप्ति को। राजा ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया था, "वह क्षेत्र नंद का क्षेत्र है। हमारी इच्छा है कि उन दुष्ट बालकों को पालने-पोसनेवाले इन गोपों को दंड मिले!* कालिय नाग सहजता से यह

---

* कालिय नाग : महाभारत के कालिय नागवंशी है। वासुकि, ऐरावत आदि की तरह अत्यधिक शक्तिशाली नाग है। महाभारत के अनुसार 'कालिय नाग मूलतः वासुकि नाग की राजधानी भोगवतीपुरी का रहनेवाला था।' भोगवतीपुरी भी इन्द्रपुरी की तरह धन-धान्य, अन्न-जल आदि से सम्पन्न और सुन्दर बसी थी। सूरसागर। अ० भा० विक्रम परिषद्, काशी : के अनुसार कालिय नाग को कृष्ण ने यमुना से निकालकर मणि द्वीप में पहुंचा दिया था। संभवतः कालिय, सांप न होकर नागवंशी एक शक्तिशाली व्यक्ति था जो यमुना किनारे अपनी सत्ता आतंक के बल पर फैलाकर नागों का वहां अस्तित्व बनाये

कर्तव्य निवाह सकेगा। कुछ समय उसे उसी क्षेत्र में निर्द्वंद्व घूमते रहने दो।'

छिः ! प्राप्ति के मन में एक धिक्कार जनम आया था। केवल कृष्ण-बलराम के कारण ही कंस समूचे जनक्षेत्र को असुरक्षित बनाये डाल रहे हैं ? अच्छा नहीं लगा, किन्तु कर भी क्या सकती थी ? शान्त रही।

और कालिय नाग का आतंक बढ़ता गया था। आये दिन विषधर नाग द्वारा की गयी हत्याओं और आतंक की घटनाओं के समाचार आते। कंस सुनते, अनसुना कर देते। एक बार हंसकर बोले थे, "क्यों, क्या गोपों के वे रक्षक बालक रीत-बीत गये हैं ? नंद से कहो, उन्हीं को स्मरण करें। उन्हें अपनी रक्षार्थ बुला लें।।"

यमुना तट-क्षेत्र के वासी निवेदन लाये थे यादवराज के पास। कालिय नाग के कारण कैसा असुरक्षापूर्ण वातावरण बन गया है ! कितना भय और आतंक फैला रखा है उसने उससे। मुक्ति दिलायी जाये !

कंस ने कठोरता से अस्वीकार कर दिया था उनका निवेदन। बोले थे, "नंद गोप से कहना, उस अद्भुत मायावी, छली बालक को बुला लें। वही उनका रक्षक रहा है, वही अब रक्षा करेगा—कौन-सा कठिन काम है ?"

रोते-बिलखते व्रजवासी लौट गये थे राजनिवास से। कालिय नाग का आतंक ज्यों-का-त्यों चलता रहा, बढ़ता गया। गोपों का पशुधन नष्ट हुआ। अनेक ग्रामवासी स्त्री, पुरुष और बालक नाग की आतंकाग्नि में भस्म हो गये।

और फिर विस्मय का पहला समाचार आया था। कृष्ण-बलराम की

रखना चाहता था। कृष्ण ने उससे यमुना और जनपदीय क्षेत्र को मुक्ति दिलायी।'

अकपाद* मे वापिसी और फिर दूसरा समाचार कालिय नाग को तटक्षेत्र से खदेड़ डालना।

प्राप्ति विस्मय किन्तु रुचि के साथ सुनती गयी थी कालिय नाग से जनपदीय क्षेत्र की मुक्ति का वह आख्यान। और केशी सुनाये गया।

---

* अकपाद : सन्दीपनि के आश्रम का नाम। सन्दीपनि का आश्रम अवन्ती में था। अवन्ती वर्तमान उज्जैन का प्राचीन नाम है।

कृष्ण वृन्दावन क्षेत्र में आते ही गोपधर्म से जुड़ गये थे। वहीं गोपों से सुनने को मिली थी, कालिय नाग की कथा। कैसा है वह? कहां से आया? किस क्षेत्र मे बसा हुआ है? क्या चाहता है वह? क्या मथुराधिपति ने उसे जनक्षेत्र से निकालने की कोई चेष्टा नहीं की? अनेक प्रश्न भी किये थे उन्होंने, किन्तु किसी भी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। सब यही कहते थे कि वे केवल यह जानते है कि कालिय नाग के यमुनाक्षेत्र मे प्रवेश वर्जित है। न उस ओर पशुओं को चराने ले जाया जाता है, न ही बालकों, स्त्री या पुरुषों को उस ओर जाने की स्वीकृति है।

कृष्ण ने उत्सुकता से पूछा था, "किसने आदेश दिया है?"

"स्वयं नंद बाबा ने कहा है यह!" उद्धव ने सूचना दी थी उन्हें।

कृष्ण उत्सुक्ता से भरे हुए नन्द बाबा के पास जा पहुंचे, किन्तु लगा कि *नंद बाबा नाग-सम्बन्धी कृष्ण की किसी जिज्ञासा का उत्तर नहीं दे रहे हैं।* वृद्ध पिता से अधिक तर्क-वितर्क करना उचित न समझकर माता के पास जा पहुंचे थे।

"माता?" यशोदा भोजन बना रही थी उस समय। रात्रि की बात है। कृष्ण ने माता के पास पहुंचकर यहां-वहां की चार बातें की, फिर अर्थ की बात पर आ गये, "यह कालिय नाग कौन है, माता?"

यशोदा चौंकी। बेटे की ओर शंकित दृष्टि से देखा। चिन्ताग्रस्त होकर पूछा, "तुझे किसने बताया उसके बारे में?"

"ऐसे ही गोपबन्धु बातें कर रहे थे। वही पता चला।" कृष्ण ने इस तरह कहा जैसे प्रश्न यों ही कर लिया है। बहुत सुनने-जानने में रुचि नहीं है उनकी। माता का ममत्वपूर्ण स्वभाव खूब जानते थे। यह भी जानते थे कि उन्हें लेकर पल-भर में चिन्तित ही नहीं, रुआंसी हो जायेगी। प्रतिपल उन्हें ही पूछती रहती थी। आंख से तनिक देर ओझल हुए नहीं कि यशोदा की खोज प्रारंभ। कहां है कान्हा? किसी ने देखा उसे? किस ओर गया है?

यशोदा चुप थीं। आटे से सने हाथ परात में थमे रह गये थे। कुछ शंका और चिन्ता से भरी-भरी कृष्ण को निहारे जा रही थी। कृष्ण ने असामान्य रूप से अपने-आप को सहज बनाये रखा। कहा, "बड़ा विचित्र है वह नाग। भला किस कारण हमारे क्षेत्र में उत्पात मचा रहा है?"

"राजा अपने-आप देख लेंगे। तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।" यशोदा ने तनिक चिढ़कर कहा, फिर प्रश्न की ओर से उपेक्षा बरत दी। बोलीं, "तू इन सब विवादों में मत पड़ाकर। अभी बालक है। यह सब तेरे विचार का विषय भी नहीं है।"

"न, मैं उस सब पर सोच थोड़े ही रहा हूं, ऐसे ही सहज जिज्ञासावश पूछने चला आया।" कृष्ण समझ गये कि अधिक बात करेंगे तो समूची रात्रि यशोदा सो नहीं सकेंगी। बार-बार शय्या से उठकर कृष्ण को देखने जायेंगी, सो रहे हैं या नहीं? बात टाल देना ही ठीक समझा। बोले, "मुझे भोजन दो। बहुत भूख लगी है।"

यशोदा जितनी शीघ्र संदिग्ध और चिन्ताग्रस्त होती थी, उतनी ही जल्दी सहज भी हो जाया करती। मुसकराकर कहा था, "आसन बिछा और हाथ-मुंह साफ कर! थाली लगाती हूं।"

कृष्ण गुनगुनाते हुए आज्ञापालन करने लगे।

निश्चय कर लिया था कि अब यशोदा या नन्द बाबा ने कालिय नाग को लेकर कुछ नहीं पूछेंगे। अगले दिन उन्होंने जानकारी की थी गोपमित्रों से। प्रतिदिन की तरह गौएं चराने चले तो बलराम से एक ओर होकर उद्धव और मनसुखा के साथ आगे निकल गये। एकांत पाते ही पूछा था, "अच्छा सच-सच बतलाना मनसुखा, यह कालिय नाग किस क्षेत्र में है?"

मनसुखा ने भयभीत होकर उद्धव को देखा। उद्धव पसीना पोंछ रहे थे। दोनों चुप रहे। कृष्ण टकटकी लगाये हुए उन्हें देखते रहे। उत्तर की प्रतीक्षा की, फिर चुप्पी देखकर समझ लिया था कि वे भी कुछ बतलाने-बोलने को तैयार नहीं हैं।

कृष्ण स्नेहपूर्ण मुसकान के साथ पुनः प्रश्न करने लगे, "जानता हूं, तुम लोग उससे भयभीत हो, इसी कारण उसका नाम तक लेना उचित नहीं समझते, क्यों?"

"नहीं, कान्हा, यह बात नहीं है।" मनसुखा ने उत्तर दिया था।

"फिर क्या बात है? भय नहीं है तो चुप क्यों हो? नाग ने तुम्हें बहुत डरा दिया है क्या?" कृष्ण के स्वर में व्यंग्य उतर आया था।

मनसुखा ने उद्धव को देखा, फिर गहरा श्वास लेकर उत्तर दिया, "यशोदा मइया ने नाही कर दी है कि तुम्हें कालिय को लेकर कुछ न बतलाया जाये। यह भी कि तुमसे इस सम्बन्ध में वार्ता ही न की जाये।"

कृष्ण हंसे, फिर चुप हो गये। मन माता के स्मरण मात्र से भर आया। कैसा अबोध स्नेह है उनका? कितना अजस्र ममत्व। कहा, "अच्छा, अब मैं तुम्हें धर्मसंकट में नहीं डालूंगा। मइया ने निश्चय ही तुम लोगों को वचन-बद्ध कर लिया होगा, है ना?"

"हां, कान्हा," उद्धव ने भोलेपन से उत्तर दिया, "हम बड़े बेबस हैं मित्र, क्षमा कर देना।"

"कोई बात नहीं, क्षमा कर दिया, पर यह तो बतला दो कि उस दुष्ट के कारण यमुना के किस तटक्षेत्र में अपनी गायें नहीं ले जानी चाहिए।"

कृष्ण ने चपलता से पूछा।

"बात तो वही होगी।" उद्धव ने तुरत उत्तर दिया। "हम मूर्ख नही हैं कन्हैया, तुम ऐसे नही तो वैसे जान लोगे। हम नही बतलायेंगे।" वह मनसुखा की ओर मुड़े, "क्यों मनसुखा?"

"हां, कान्हा बहुत चालाक है।"

कृष्ण ने उसी भोलेपन को जुटाये रखा। कहा, "तुम लोग तो मूर्ख हो। अरे, यह भी नही समझते कि पशु निर्बोध होता है। उसकी रक्षा करने के लिए ही हम लोग उसके साथ जाते हैं। क्या मालूम किस दिशा में निकल जाये। उसकी रक्षा के लिए सभी गोपों को यह ज्ञात होना चाहिये कि विपत्ति किस ओर है। न बतलाओ तो नही सही, पर इतना जान लो कि किसी गौ को कुछ हो गया, तो फिर मत कहना कि कान्हा, यह कैसे हुआ?" बात समाप्त करके कृष्ण रूठने हुए-से चल पड़े। बड़बड़ाते भी गये, "निपट मूर्ख हो तुम लोग!"

कान्हा रुष्ट हो जाये, यह न मनसुखा के लिए सहनीय था, न उद्धव के लिए। सरलमन गोप बालक तुरन्त भागे आये, "रुको, कान्हा।"

"ऐ, कन्हैया।" उद्धव ने आकर बाह थाम ली थी, स्नेह-भरे शब्दों में कहा था, "तुम तो रूठ गये। तुमसे विलग कैसे रह सकेंगे हम लोग?"

"तो बतलाओ, किधर है वह नाग-क्षेत्र?" कृष्ण ने पुन. प्रश्न किया था, "उस ओर गौएं न जा सकें, यह हम सभी को ध्यान रखना होगा।"

"उधर, बायी ओर।" मनसुखा ने उत्तर दिया था, फिर प्रार्थना भी की, "पर यह सब गौओं के कारण बतलाया है तुम्हे, स्मरण रखना!"

कृष्ण ने कुछ कहा नही। बायी ओर तटक्षेत्र को घूरते रहे। ऐसे जैसे साक्षात् नाग को ही देख रहे हों, फिर यहां-वहां की बातें करने लगे।

संध्यावेला हुई तो गौओं को हांकते हुए सब लोग जनक्षेत्र की ओर लौट आये। उद्धव और मनसुखा सारा दिन आशंकित रहे थे। कहीं कृष्ण बायीं ओर न चल पड़ें। कुछ अनर्थ हुआ तो दोष उन पर आ जायेगा,

किन्तु आश्वस्त हुए। कृष्ण ने सारा दिन बड़ी शान्ति के साथ बिताया था।

अगले दिन जानबूझकर कृष्ण नहीं गये थे गौओं के साथ। सहज था कि बहुतेक गोप बालक भी कतरा गये। कृष्ण की अनुपस्थिति में गौ चराने का लम्बा समय काटना कठिन हो जाता था। सभी ने निश्चय किया था कि खेलेंगे। माता यशोदा ने कठोर आदेश दिये थे—खेलें, किन्तु यमुना की ओर न जायें। कृष्ण ने स्वीकार लिया था। दोपहर होते ही सब लोग गेंद लेकर एक ओर चल पड़े। कर संकर्षण और अन्य लोग वन चले गये थे।

गेंदमार खेलना आरंभ किया था उन्होंने। खेलते-खेलते ही तटक्षेत्र की ओर जा पहुंचे। उद्धव ने सावधान किया था, "कान्हा, उस ओर नहीं।"

"निश्चिन्त रहो।" कृष्ण ने आश्वस्त किया था, फिर सभी खेल में निमग्न हो गये। कुछ समय शान्ति के साथ कटा, फिर सांस लेने के लिए तनिक थमे, तो सखाओं से घिरे कन्हैया ने पूछा था, "इसका अर्थ तो यह हुआ उद्धव, कि हम लोग कभी तटक्षेत्र की ओर खेल ही नहीं सकेंगे? क्यों?"

"हां, कन्हैया!" मनसुखा ने बात थाम ली थी बीच में, "वह दुष्ट नाग जो बैठा हुआ है उधर। बालक तो दूर, बड़े लोग भी उस ओर नहीं जा पाते।"

"ऐसा आतंक है उसका?" कृष्ण ने चकित होकर प्रश्न किया।

"हां, कितनों को तो समाप्त कर चुका है वह।" उद्धव ने बतलाया, "फिर एक वही अकेला थोड़े है। उसकी स्त्रियां भी हैं। एक तरह से वृन्दावन के शान्त वातावरण में वह ज्वालामुखी की तरह धधकता रहता है। एक

कुंड भी बना रखा है उसने। विषमय जल का कुंड। नाग से आमना-सामना हो, उसके पूर्व तो उस कुंड का विष ही मनुष्य को नष्ट कर डालता है।"

"कब से आया वह ?"

"किसीको ज्ञात नहीं।" किसी अन्य गोप बालक ने बतलाया था, "सब यही कहते हैं कि अचानक घटनाएं घटने लगी, फिर ज्ञात हुआ कि नाग है। एक बार बरसाना वासी एक नागरिक को पकड़ लिया था उसने। न जाने कैसे दया करके छोड़ दिया। उसीसे बहुतेक सूचनाएं मिली। उसीने कहा था कि उसका नाम कालिय है। वासुकि नाग के वंश का यह शक्तिशाली नाग एक बड़े क्षेत्र पर अधिकार किये हुए है।"

"उसके रहने का कोई निश्चित स्थान है ?" कृष्ण ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"है क्यों नहीं ?" उद्धव ने बतलाया, "वह जो दह दीख रहा है ना, उसी में कहीं रहता है कालिय, पर उससे पूर्व विषकुंड है। इस विषकुंड की रचना उसने अपनी रक्षार्थ कर रखी है। फिर नाग स्वयं भी बहुत शक्तिशाली है। जिसको बाहों में जकड़ लेता है, उसके शरीर को तोड़-मरोड़ डालता है। भयंकर बली है।"

कृष्ण ने सुना या नहीं सुना, कौन जाने ? किन्तु सब बालक देख रहे थे। दृष्टि उसी दिशा में ठहरी हुई है। विषकुंड और उसके बाद कालीदह।

"कान्हा !" मनसुखा ने जैसे उनकी तन्मय दृष्टि तोड़ना चाही थी।

वह मुड़े, "क्या ?"

मनसुखा ने प्रश्न किया था, "क्या विचारने लगे तुम ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही। देख रहा हूं, उस नाग ने कितनी शक्ति जुटा रखी होगी ?"

उद्धव की ओर सहमकर देखा था मनसुखा ने। कहा, "कुछ ऐसा-वैसा मत कर बैठना। यशोदा मइया बहुत रुष्ट होंगी। हममें से एक को भी तुम तक नहीं आने देंगी।"

"न-न, सो तुम निश्चिन्त रहो। वैसा अवसर नहीं आयेगा।" कृष्ण गहरी श्वास लेकर उठ पड़े थे, "तुम लोग तो सदा मेरे साथ रहोगे और मैं भी सदा तुम्हारे साथ हूं। हम अभिन्न मित्र हैं।" यों भी कृष्ण से किसीका मन जुड़ जाये तो वह न कभी कृष्ण से परे होता है, न कृष्ण ऐसा दुस्साहस कर सकते हैं कि उससे परे चले जायें।"

वे सब उठे। पुनः खेलने लगे। बहुत तीव्र गति थी खेल की। जैसे-जैसे समय बीत रहा था, गोप बालकों के बीच खेल और-और गतिमय होता जा रहा था। फिर जब सूर्य बिलकुल सिर पर पहुंचा, तब गेंद की गति किरन जैसी चकाचौंध देने लगी। इसी चकाचौंध में कृष्ण के हाथ लगी गेंद वायुगति से यमुना तट के उसी क्षेत्र में चली गयी थी, जिस क्षेत्र में कालिय नाग था।

कृष्ण वायुगति से गेंद लेने लपके। गोप बालक चिल्लाये थे, "कान्हा, रुको, उस ओर नहीं, रुक जाओ।"

पर कृष्ण ने सुना अनसुना कर दिया। शब्द पूरे होते-न-होते चपल कृष्ण तटक्षेत्र में पहुंचकर कदम्ब वृक्ष पर जा चढ़े। अगले ही क्षण कृष्ण ने एक उछाल ली और विषमय कुंड को पार करके वह कालीदह के मुंह पर थे।

"कन्हैया!" उद्धव वेदना से भरकर चिल्लाये थे। रुआंसे। गोप बालक भयभीत होकर तट से कुछ परे हटे उस ओर देखते रहे, जिधर कृष्ण ने छलांग ली थी, पर वह दीख नहीं रहे थे! कई रो भी पड़े, "कान्हा!… कन्हैया!" अनेक छोटे बालक बस्ती की ओर दौड़ पड़े थे।

पल-भर में समूचे वृन्दावन क्षेत्र में शोर मच गया था। नन्द का उद्दंड बालक काली दह* में कूद गया। स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध सभी लपक पड़े थे

* नाग का निवास स्थान

तट की ओर। यशोदा माथा धुनती हुई महिलाओं की पकड़ में थमी हुई थी। शोकविह्वल नन्द भी रोते-विलखते आ पहुंचे थे। कुछ लोग लपके थे वन की ओर। बलराम और अन्य गोपों को सूचना पहुंचाने। सभी की आंखें कालीदह पर टिकी हुई। जल जैसे खौल रहा था और कृष्ण अदृश्य ! कहां गये वह !

तट-क्षेत्र भयातुर चीत्र-पुकारों से भरा हुआ था। उद्धव और मनसुखा डर के मारे पसीने से लथपथ हो गये थे। अपराध-बोध ने बुरी तरह झकझोर डाला था उन्हें। वही तो थे, जिन्होंने कालीदह और नाग-सम्बन्धी अनेक सूचनाएं कान्हा को दी थी। जब वृद्ध स्त्री-पुरुषों को यह सब ज्ञात होगा, तो क्या गति होगी उनकी ! विचारमात्र से कम्पन हो रहा था। कितनी ही बार झुंझलाहट भी आती थी कृष्ण पर। कैसा उद्दंड रहा ! न अपनी आयु का अनुमान, न शक्ति की समझ। दुस्साहस की भी कोई सीमा होती है। और अब पाया था कि दुस्साहस ही सीमाहीन होता है। वैसा न होता, तो कृष्ण यह दुश्चेष्टा करते ?

निश्चित हो चुका था, कृष्ण का बचना असंभव। विशेषकर इस कारण कि उसने नाग की शक्ति को चुनौती दी थी और कालिय की अपूर्व शक्ति और सामर्थ्य सबकी जानी-पहचानी। यह तो ऐसे ही हुआ था, जैसे कोई बालक पहाड़ में ठोकर मारे।

यशोदा गोप बालकों को कोस रही थीं। सबसे ज्यादा मनसुखा और उद्धव को, "यही दुष्ट है, जो उसे दुर्मति देते रहते है। अब क्या होगा मेरे कन्हैया का ? तेरे बिना मैं कैसे जी सकूंगी कन्हैया ?" उत्तेजना और भावावेश में बेकाबू होकर यशोदा महिलाओं की जकड़ से छूटकर यमुना में ही कूदने दौड़ीं।

"अरे रे, यह क्या करती हो तुम ?" कहते हुए कुछ महिलाओं ने पुनः उन्हें थाम लिया। वह धरती पर गिरकर ही विलाप करने लगी।

कृष्ण उस समय तक कालीदह के भीतर ही थे। सभी की दृष्टि से

अलोप। जैसे-जैसे पल बीत रहे थे, वैसे-वैसे निश्चित होता जा रहा था, अब कन्हैया का जीवित लौटना असंभव। देह भी मिल जाये तो बहुत।

सहसा यमुना के जल में भारी उथल-पुथल होने लगी। लगता था कि पानी में भूकम्प समा गया है। सहमी हुई अनेक आंखें उसी ओर लग गयी थी। जल की उथल-पुथल तेज गति से तटक्षेत्र की ओर बढ़ी आ रही थी। थोड़ी ही देर में वह तट तक आ पहुंची। भयंकर हुंकारें भी उठने लगी थीं जल से।

भयभीत गोप बालकों ने देखा था कि कन्हैया को बांहों में जकड़े हुए वह भयावह नाग इधर से उधर जल में ही उपद्रव मचा रहा है। लगता था कि उसने बांहों में किसी ऐसी वस्तु को पकड़ लिया है, जो रह-रहकर हाथों से छिटक जाती है। फिर उन्होंने कन्हैया को देखा, वह बेसुध-सा उसके पर्वत सदृश शरीर से चिपका हुआ था।

"कान्हा !" अनेक स्वर उठे। यह स्वर चीत्कार से भरे हुए थे। उनसे कहीं अधिक भय से।

यशोदा अधिक ही रोने-सिसकने लगी।

कन्हैया और नाग गुत्थमगुत्था हो रहे थे। बहुत विस्मयकारी दृश्य था वह। विशालदेह कालिय नाग और बालक कृष्ण, पर सर्वाधिक विस्मय तब हुआ था, जब कन्हैया से जूझता-लिपटता हुआ नाग एकदम तट तक आ गया। आधा शरीर जल में था, आधा जल के बाहर। कन्हैया ने आश्चर्यजनक फुर्ती के साथ नाग को धरती पर गिरा दिया, फिर इतनी गति के साथ उछल-उछलकर उसके मस्तक पर पादप्रहार करने लगा कि हर प्रहार के साथ वह मरणांतक पुकारें लगाने लगा।

"हे भगवान् ! यह बालक तो आश्चर्य है!" अनेक लोगों के होंठों से एक साथ निकला। अनेक जैसे स्वप्नलीन ही हो रहे थे। अवाक् होकर उस विस्मयकारी कृष्ण को देखते हुए।

कृष्ण पूर्ववत् वही उछल-कूद मचाता हुआ। नाग हाँफता, फुफकारता अब नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था और कृष्ण थे कि उसके अर्धमृत शरीर पर उछल-कूद कर रहे थे। बिल्कुल ऐसे ही जैसे एक बच्चा खेल रहा हो।*

"क्षमा ! क्षमा प्रभु !" सहसा नाग चीखा था। उसकी विशाल देह चकनाचूर हुई जा रही थी।

तटक्षेत्र पर खड़े गोप बालक-बालिकाओं, बूढ़ों और युवकों की बोलती बन्द हो चुकी थी। लगा कि अविश्वसनीय को घटते देखकर वे स्तब्ध,

---

* कालिय नाग और श्री कृष्ण के संघर्ष का वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है, 'श्री कृष्ण जब जल में लीला करने लगे, तो अपने घर का विनाश जानकर कालिय नाग दौड़ा आया। श्री कृष्ण को मर्म स्थान में डसने के हेतु उसने अपने शरीर से उनको लपेट लिया।' आगे लिखा गया है, 'गोप जब कालीदह पहुंचे तो दूर से ही देखा कि कालिय नाग कृष्ण के शरीर से लिपट रहा है। कृष्ण चेष्टारहित हो गए हैं।" आगे 'भगवान् ने अपना शरीर बढ़ाया, जिससे कालिय नाग का शरीर व्यथित होने लगा। अंगों के बन्धन ढीले हो गए।' (दशम स्कन्ध)
उपर्युक्त वर्णन प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है और नागवंशी पुरुष कालिय, मनुष्य न रहकर नाग के रूप में चित्रित है, किन्तु वर्णन में दोहरे अर्थ छिपे हैं, जो स्पष्ट करते हैं कि कालिय नागवंशी पुरुष ही था। आगे भी जब इसी वर्णन में नागपत्नियों की प्रार्थना पर श्री कृष्ण द्वारा कालिय नाग को छोड़ने की घटना आयी है, तब यह कालिय का मनुष्य होना ही सिद्ध करती है।

मूर्ति बन गये है। एक ओर से नाग पत्नियां लपक आयी। बालक कृष्ण के आगे हाथ जोड दिये थे उन्होंने, "इन्हें क्षमा कर दो, प्रभु! इन्हें मुक्ति दो!"

कृष्ण पूर्ववत् कालिय नाग की देह पर सवार रहे। पूछा, "क्षमा कर दूं? इस उद्दंड और क्रूर नाग को क्षमा कर दूं?"

"हां, प्रभु!" नाग पत्नियो ने आगे बढकर प्रणाम किया था उन्हें, "इनके अपराधो का दंड इन्हें मिल चुका। हमें सौभाग्यदान दो!"

कृष्ण ने चरणतले दबे नाग को देखा। उसने भी कातर स्वर में वही सब कहा था, "आप जो आज्ञा देंगे, मैं वही करूंगा, किन्तु मुझे प्राणदान दें।"

"तब तुम ब्रजक्षेत्र छोडकर कहीं अन्यत्र जा बसो नागराज!" कृष्ण बोले थे, "इस भूखंड की सुख-शान्ति नष्ट मत करो!"

"मैं वचन देता हू, भगवन्!" नाग बोला था। कृष्ण उसकी देह से उतर आये। नाग और नाग-पत्नियो ने उन्हें प्रणाम किया और चल पड़े थे।

यशोदा ने बांहों में भर लिया था कान्हा को। चूमने-दुलारने का वही ममतामय दौर चला, फिर आनंद से रोती-हंसती घर चली आयी थी। वृन्दावन ही नहीं, दूर-दूरत नगर-ग्रामों में बालक कृष्ण का यह नया कथा-काड वार्ता की रोचक टिप्पणियो के साथ बिखर गया था।

सुनते-सुनते व्यग्र हो उठे थे कंस। मन हुआ था, कह दें—"यह असंभव है। अतिशयोक्तिपूर्ण, किन्तु व्यर्थ था। केशी और उनके गुप्तचरों ने समाचार की पूरी तरह पुष्टि करने के बाद ही उसे मथुराधिपति तक पहुंचाया होगा।

वे सब महाराज का चेहरा देखते हुए। अब क्या कहेंगे वह? कौन-सा नया आदेश देंगे? पर लगता था कि पहली बार कोई नया आदेश देने में कंस कतरा रहे हैं। भय की उतनी सघन छाया भी इससे पूर्व उनके चेहरे पर इतनी गहराई के साथ नहीं देखी थी किसी ने। स्वयं प्राप्ति को भी यही अनुभव हुआ था। पति की वह अस्त-व्यस्त मुद्रा। मुद्रा या मन?

निस्संदेह मन से ही अस्त-व्यस्त होने लगे थे कंस। कालिय नाग जैसे अपूर्व शक्तिशाली शत्रु को इस तरह वृन्दावन से निर्वासित करके यशोदासुत ने सिद्ध कर दिया था कि वह असामान्य शक्ति से सम्पन्न है। बहुत सीमा तक घोर मायावी।

सब कहते थे अलौकिक है कृष्ण, किन्तु कंस कभी नहीं स्वीकार सके। मानवीय शक्ति से आगे कोई शक्ति होती है, यह स्वीकारना उनके लिए असंभव था। फिर एक बालक में? नहीं, निश्चय ही कुछ ऐसा था, जिसे प्राप्त कर रखा था उस बालक ने और संयोग है कि वहीं सब निरन्तर

घटनाओं का कारण रहा है। हर घटना में जुड़ी सफलता के संयोग ने कृष्ण की छवि अलौकिक बना दी है। क्या है वह शक्ति? कोई तंत्र-मंत्र? अथवा योगबल?

वैसा भी नहीं लगता। तंत्र-मंत्र की प्राप्ति के लिए असंख्य और दुष्कर साधनाएं करनी होती हैं, जबकि उस बालक की तो अभी आयु ही कुछ नहीं है। कंस तर्क-वितर्क करते रहते थे। बहुत दिनों तक कोई निर्णय नहीं कर सके थे कृष्ण को लेकर। योगबल के लिए भी साधना और संयम की जो दुष्कर यात्रा करनी पड़ती है, उसकी कसौटी पर भी कृष्ण कसे नहीं जा रहे थे।

यह सब प्राप्ति ने भी सोचा था। उनकी तरह बहुतों ने सोचा होगा। उन सबने, जो कंस का शुभ चाहते थे, किन्तु उत्तर कभी नहीं मिलता था। इस समय भी नहीं मिला है। उत्तरहीन ही तो अलौकिक होता है। इसी-लिए नन्दपुत्र अलौकिक है। सब यही कहते थे। सामान्य जन की यही सम्मति थी।

प्राप्ति को स्मरण है। महाराज कंस ने कालिय मर्दन की घटना के बाद विचार-विमर्श के लिए अनेक विद्वान् यादव सामंतों को बुलवा भेजा था। उन्हीं में थे अक्रूर। सबसे शांत, सबसे सरल और ज्ञान में सबसे जटिल।

रानियों की उपस्थिति में ही चर्चा की थी उनसे। सम्मान सहित बुलाकर अक्रूर से कहा था, "वृद्धवर, उस गोप बालक को लेकर विस्मय-कारी घटनाएं सुन रहे हैं हम। क्या आप भी यही मानते हैं कि वह अलौकिक है?"

अक्रूर ने आसन ग्रहण किया। राजा की ओर शांत दृष्टि से देखते रहे, फिर कहा था, "लगता तो यही है राजन्, सृष्टि में कुछ बातें तर्क-वितर्क से परे होती हैं। जब किसी जीव में वह सब होने लगे, तो समझिए प्रकृति ही है। और प्रकृति अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न होती है।"

अस्ति और प्राप्ति शांत बैठी थी। वृद्ध अक्रूर यादव कुल के श्रेष्ठों में से थे। पहली बार उनसे इतना गंभीर विचार-विमर्श देख-सुन रही थी। कंस ने सुना। शांत रहे, जैसे प्रश्न पूर्व बहुत सोचना पड रहा हो। प्राप्ति को आश्चर्य हुआ था। पति इतने विचारशील तो कभी नहीं हुए थे। उद्दंड क्रोध उनका सहज स्वभाव था। कूटनीति के नाम पर छल-जाल बुनना उनके लिए सहज था, पर विद्वानों से चर्चा मात्र करते हुए सकोचग्रस्त हो उठते थे। अधिक सोचें इसके पूर्व ही अक्रूर पुनः बोल पडे, "राजन्, यशोदानन्दन को लेकर मैंने भी जो कुछ सुना है, वह अद्भुत ही है।"

"किन्तु देखा तो नहीं है उसे आपने ?" कंस ने सहसा झिड़ककर पूछ लिया। लगता था कि वह कृष्ण की चर्चा मात्र में असहज हो उठते हैं। घृणा और भय की सम्मिलित मनःस्थिति ने उन्हें अदृश्य में ही हाथ-पैर चलाने जैसी उत्तेजना तक पहुंचा रखा था।

"नहीं, मैंने देखा नहीं है उसे राजन्", अक्रूर ने शांत स्वर में कहा था, "पर जिन लोगों ने उसे देखा है, उनसे सुना है। जो सुना है, वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है।'

"क्या सुना है आपने ?"

"सुना है कि वह अल्पायु बालक दृष्टि-दर्शन से ही प्रभावित करता है।" अक्रूर ने उत्तर दिया था, "वह मोहक है, सुन्दर है, चपल है और प्रभावशाली है।"

"शक्ति ?"

"यह सब शक्तियां ही तो हैं, यादवराज, जहां तक शारीरिक क्षमता और शक्ति की बात है, सो तृणावर्त, बकासुर, कालिय युद्ध कितनी ही घटनाएं तो हैं, जो प्रमाणित करती हैं कि नन्दलाल असामान्य शक्ति से पूर्ण है।"

"हूं।" गुर्राये थे कंस। चहलकदमी करते रहे। थोड़ी देर बाद जैसे उन्हें अक्रूर की उपस्थिति ही असह्य होने लगी थी। कहा था, "धन्यवाद

यादवश्रेष्ठ, कल सभा में आपके दर्शन करके प्रसन्नता होगी।"

अक्रूर उठे। अभिवादन किया चले गये।

प्राप्ति को अच्छा नहीं लगा था राजा का वह असामान्य व्यवहार। इस तरह कंस अपने ही शुभैषियों को खो देंगे। केवल खोयेंगे ही नहीं, उन्हें शत्रु भी बना लेंगे, किंतु उत्तेजित और क्रोधी राजा से तर्क-वितर्क करना उचित नहीं था। प्राप्ति शांत रही।

अस्ति ने कहा था, "एक निवेदन करूं, महाराज।"

"कहो?"

"आप उन दुष्ट गोप बालकों को यहीं बुलवा लीजिये।" अस्ति ने सम्मति दी। प्राप्ति ने चौंककर बहन को देखा। यह कैसी सम्मति। भला इसमें कौन-सा शुभ देखा है रानी ने? कंस भी इसी प्रश्न को संजोये पत्नी को देखने लगे।

अस्ति ने कहा था, "उन उद्दंड बालकों का उपचार शक्ति-केन्द्र के बीच ही उन्हें जकड़कर किया जा सकता है। यों भी जिस प्रकार उन्हें लेकर अलौकिक घटनाएं जन-साधारण में फैल रही हैं, वह आपके लिए शुभ नहीं है। यह जन प्रभाव अधिक बढ़े, उसके पूर्व ही उन्हें थाम लेना आवश्यक है महाराज।"

कंस बोले नहीं, किंतु टकटकी बांधे हुए अस्ति को देखे गये। प्राप्ति कुछ सोच-समझ नहीं पा रही थी। मन कहता था कि जो कुछ हो रहा है, वह सब शुभ नहीं होगा। तभी मथुराधिपति आसन पर बैठ गये थे। कहा था, "तुम्हारी सम्मति सुनी देवी, किंतु इस तरह का राज्यामंत्रण तो उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण बनायेगा। प्रजा-जन सोचेंगे कि महाराज कंस ने उन अद्भुत बालकों की अलौकिक शक्तियों को स्वीकार लिया है। यह समर्पण की क्रिया नहीं हो जायेगी?"

"नहीं, देव।" अस्ति ने उत्तर दिया था, "नीति के अनुसार यही उचित है। शत्रु यदि छोटे छल-जाल में नहीं फंसे, तो उसे बड़े छल से हरा

किया जाना उचित है। उन बालकों का प्रभावक्षेत्र बढ़े, इसके पूर्व उन्हें नष्ट कर देने का सबसे श्रेष्ठ साधन यही है।"

कंस ने उत्तर नहीं दिया था। प्राप्ति को लगा था कि वह निश्चय नहीं कर पा रहे हैं। अगले दिन भी यही सिद्ध हुआ। कंस कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे।

प्राप्ति को एक नयी चिंता ने जकड़ लिया था। स्मरण हो आयी थी एक घटना। एक बार सभासदों को किसी समस्या पर विचार-विमर्श में उलझे पाकर महाराज जरासंध ने कहा था, "वह राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, जिसके कर्णधारों के पास निर्णायक शक्ति शेष न रहे अथवा निर्णयपूर्व वह अनावश्यक समय लेने लगें।"

तब क्या महाराज कंस भी उसी मनःस्थिति में आ गये थे? प्राप्ति सोचने लगी थी। इस सोच ने मन को भयग्रस्त कर दिया था। अशुभ के प्रति चिन्तित। भवितव्य के प्रति शंकाकुल। इस शंकाग्रस्त मन ने जीवन का सारा उत्साह निचोड़ना प्रारम्भ कर दिया था। लगता था कि धीमे-धीमे कोई अदृश्य शक्ति प्राप्ति का सुख, शांति, आनन्द सभी कुछ चुकाये जा रही है। ऐसे जैसे थोड़े-से जल-कुंड के गिर्द दावानल सुलग उठा हो। मन की सम्पूर्ण निर्मलता और शीतलता धीमे-धीमे बूंद-बूंद छनकर सूखती जा रही हो। प्राप्ति घोर अशांति से भर उठी थी, पर यह अशांति किसी से कही भी नहीं जा सकती। कैसे कहेगी? सभी ओर तो यही अशांति और व्यग्रता है?

महाराज कंस किसी भी पल सहज नहीं रह पाते। राजा के प्रति सेवकों-सामन्तों में भी एक अविश्वास का भाव भरने लगा है। जिस आंख को देखती है, लगता है कि उसकी कोरों पर महाराज कंस के राजा रह पाने न रह पाने को लेकर एक शंका बैठी हुई है। शब्दहीन होते हुए भी वाचाल शंका।

ऋतु आये दिन वृन्दावन का कोई-न-कोई समाचार ले आया करती थी। वही कृष्ण-बलराम से सम्बद्ध समाचार। प्राप्ति मूर्तिवत् सुनती

रहती। कभी-कभी सहज होती, तो प्रश्न भी कर लेती, "फिर? फिर आगे क्या हुआ?'

"कुछ नहीं देवि," ऋतु सुनाये जाती, "नन्दलाल तो बहुत चपल है ना। सम्पूर्ण वृजक्षेत्र में उसकी बाल-लीलाओं को लेकर आनंद-ही-आनंद बिखरा रहता है।"

कितना मन होता था प्राप्ति का कि यशोदा के पुत्र से घृणा करे, उससे रुष्ट रहे। उसी तरह, जिस तरह बहन अस्ति रहा करती थी। पति कंस के प्रति भक्ति के लिए यह आवश्यक लगता था, किन्तु वैसा हो नहीं पाता। अनेक बार प्राप्ति अपने से ही प्रश्न कर बैठती थी, 'भला क्यों कर प्राप्ति उस तरह कृष्ण को लेकर अरुचि व्यक्त नहीं कर पाती?'

'संभवतः कृष्ण उसे दोषी नहीं लगते।' उसके अपने भीतर से उत्तर उगल पड़ता। फिर उसका तर्क भी। मथुरा के राजभवन में आते ही उसने पति की ओर से उन अबोध शिशुओं के विरुद्ध केवल षड्यंत्र ही देखे हैं। यदि उन षड्यंत्रों से वे बालक बार-बार उबर आते है, तो इसमें दोषी क्यों हुए? किन्तु पति-भक्ति के नाते प्राप्ति को भी उन्हें दोषी मानना चाहिए। मन का एक और पक्ष था, जो अपनी ही तरह तर्क कर उठता। नहीं, ऐसा नहीं कर सकेगी प्राप्ति। तब क्या पति द्रोह करेगी वह?

न्यायपक्ष की ओर सहानुभूति जुटाये रखना किसी के प्रति द्रोह नहीं है। पति-द्रोह तो तब होता, जब प्राप्ति कृष्ण-पक्ष के हिताहित की क्रिया से जुड़ जाती। वह केवल सहानुभूति रखती है उन लोगों से। लगता है कि कंस उनके प्रति अनावश्यक रूप से षड्यंत्र किये जा रहे हैं। भला उन लोगों ने अहित क्या किया है मथुराधिपति का? और जब वैसा कुछ नहीं हुआ, तब किस कारण राजनीति उन्हें दंडित-प्रताड़ित किये जाती है?

पर पति के विरुद्ध विचार करना दोष होता है। कुतर्क से ही सही, किंतु प्राप्ति का अन्तरमन उसे दबोच लेना चाहता। प्राप्ति एक क्षण के लिए सकपका जाती। दोष-बोध से आहत होने लगती। अगले ही क्षण एक

तर्क उभर आता उसकी अन्तरात्मा से, झूठ यह है। पति दोष के विरुद्ध विचार करने से दोष नहीं लगता। तब प्राप्ति ही क्यों दोषी हुई?

मन सहज हो जाता। निस्संदेह कोई दोष नहीं है प्राप्ति का। मानवीय संवेदना के नाते उसे न्याय-अन्याय दोनों ही पक्षों पर विचार करने का अधिकार है। दोष तो यह है कि पति मर्यादा के सीमा बंधन ने उसे अनीति को रोकने में भी लाचार कर डाला है, किंतु क्या कृष्ण के प्रति सहानुभूति का कारण मात्र प्राप्ति का अंतरन्याय ही है? एक और प्रश्न कुलबुलाने लगता है आत्मा में। और प्राप्ति को लगता है कि इस प्रश्न का उत्तर देना उसके वश में नहीं। कृष्ण के प्रति सहानुभूति है या अलौकिक के प्रति श्रद्धा, प्राप्ति के लिए निश्चय करना कठिन है। बस, इतना जानती है प्राप्ति कि जब-जब उसने उन्हें लेकर कुछ सुना है, तब-तब वह श्रद्धा-विभोर हुई है। अधिक और अधिक रुचि लेकर जानने की चेष्टा करती रही है।

उस बार ऋतु द्वारा उनके बाल-कौतुक सुनाये जाने पर भी तो यही प्रतिक्रिया हुई थी।

ऋतु बोली थी, "महिमामयी, जब से बालक कृष्ण ब्रजभूमि पर जनमा है, तब से ब्रजवासी धन-धान्य से पूर्ण हो गये हैं। प्रकृति पूर्वापेक्षा अधिक समृद्ध हुई दीख पड़ती है और गौएं अधिक दूध देने लगी हैं।"

हंस पड़ी थी प्राप्ति, "तू तो विलक्षण बातें करती है ऋतु," उसने अविश्वास से कहा था, "संयोग मात्र से उस बालक को अलौकिक मत बना। मैं जानती हूं कि उसने आश्चर्यजनक लीलाएं की हैं। दुर्द्धर्ष असुरों का संहार किया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम सब उसे ईश्वर मान लें! कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम गोकुल-वृन्दावन वासी उस बालक को ईश्वर बनाकर राज्य को भयभीत करना चाहते हो? यदि ऐसा है, तब यह तुम लोगों की मूर्खता होगी। महाराज कंस या उनके अनुयायी कभी भी तुम्हारे कान्हा को देवरूप में स्वीकार नहीं करेंगे।"

"नहीं-नहीं, महारानी, यह बात नहीं है।" कुछ डर-सहम के साथ

ऋतु ने उत्तर दिया था, "ब्रजवासी तो कभी नहीं चाहते कि महाराज कंस के महान् व्यक्तित्व पर कोई अकारण थुपे, पर कान्हा को लेकर जो कुछ सत्य है, उसे ही वह अनुभव करते हैं। वह उसके प्रति भक्ति रखते हैं। और क्यों न रखें, देवि, कान्हा है ही ऐसा मोहक, नटखट और प्रभावशाली। उस पर क्रोध भी आता है, तो मन होता है, स्नेह रूप में अभिव्यक्त हो, उसे लेकर माता यशोदा ही नहीं, गोकुल की हर गोपी इस भाव में चिंतित हो जाती है, जैसे उसका अपना कुछ खो रहा हो। ऐसा विलक्षण मोह जगा देना क्या सामान्य के लिए संभव है, तनिक आप ही बतलाइये?"

प्राप्ति चुप, ठिठकी-सी ऋतु की आंखों में देखती रह गयी थी। लगा था कि स्नेह और मोह का वह शब्द-समुद्र तो उसके अपने भीतर भी भरा हुआ है, जिसका अभी-अभी वह वर्णन कर रही थी। पूछा था, "तूने तो देखा है ना उसे?"

"हां, महारानी।"

"कैसा है वह?"

"शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता उसका।" ऋतु ने जैसे मुग्ध होकर उत्तर दिया था, स्वर चाशनी से लिपटा हुआ। बोली थी, "अब क्या कहूं आपसे? नीलवर्णी आकाश को देखा है न आपने?"

"हूं।"

"तो बस, ऐसा ही है उसका रंग और इस आकाश पर यदि काली घुघराली घटा उमड़ पड़े, तो कैसा लगेगा? ऐसी ही कुछ है कान्हा की केशराशि। फिर यशोदा उसका श्रृंगार भी ऐसा करती हैं कि वह वर्णनातीत सुन्दर लगने लगता है। मुसकान उसके होंठों पर ऐसे चमकती है, जैसे बिजली कौंधे। जिसे आंखें भरकर देख लेता है, वही सुध-बुध खो बैठता है, ऐसा सम्मोहन है उस बालक का।"

प्राप्ति नहीं जानती थी कि वह क्या कुछ सुनना, जानना या पूछना चाहती है। बस, इतना जानती थी कि वह सुनती रहती है, ऋतु बहुत कुछ

बतलानी हैं। क्रमबद्ध की जायें तो आनंद-रस से सराबोर गोकुल के उन समूचे दृश्यों को ही देखा जा सकता है, जो प्राप्ति ने ऋतु से सुने हैं। उसके वर्णन में कवित्व शक्ति है, शब्दशः चित्र खिंच आता है।

गोकुल-वृन्दावन। कान्हा की बाल-लीलाओं का क्षेत्र। ऋतु बोली थी, "लगता है कि कान्हा के बनाये उस सुमधुर वाद्ययंत्र की सलोनी धुन सभी दिशाओं में बिखरी रहती है। वृक्षों से लेकर जड़ पर्वतों तक में सजीवनी बनी हुई। बांसुरी कहते हैं उसे। यह बांसुरी गूंजती है, तो एक साथ चैतन्यता और चेतनाहीनता की अद्भुत अनुभूति बिखर जाती है सब ओर।

"प्रकृति और पुरुष के उस सम्मिलन का साक्षात् अनुभव करना हो, तो वृन्दावन से श्रेष्ठ क्या है? और कृष्ण-कथा के अतिरिक्त वह कहां मिल सकता है?" ऋतु यही कुछ कहा करती थी। प्राप्ति को सब कुछ स्मरण है। मन होता था कि वृन्दावन जाये और स्वयं देखे कृष्ण-लीला, किंतु राज-मर्यादा पैरों में बेड़ी बनकर पड़ी थी। प्राप्ति केवल अनुभव करती। जिन शब्दों को सुनती, उनमें तरह-तरह के चित्र बनाकर मन में अनुभूति करती।

ऋतु से बहुत कुछ सुनने-जानने को मिला था नटखट नन्दपुत्र को लेकर। गोपियों के वस्त्र हरण, रासलीला और महारास को लेकर। विचित्र बात यह थी कि सुनकर आश्चर्य होता। यशोदापुत्र स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्धों में भी समान रूप से प्रिय था। वे सभी उसे नेह करते थे। गोपियां उसके प्रति मोहमयी हो उठी थीं। ऋतु कहा करती, "वह साक्षात् मोहिनी बनकर सम्पूर्ण ब्रज के जड़-चेतन पर बिखर गया है देवि, उसके इतर कुछ नहीं और सब कुछ उससे परे। वह उनका विश्वास बन

गया है, वही उनकी शक्ति, वही उनका सुख और आनन्द तथा वही उनकी कामना। और क्यों न हो? वह किस-किस तरह तो ब्रजवासियों का रक्षक हुआ है देवि।"

इसी वार्ता-संदर्भ में वर्णन आया था गोवर्धन लीला का। सभवतः न भी आता। ऋतु हो या कोई अन्य, कृष्ण की चर्चा अब शक्ति की तरह ही होती थी। घटनाएं श्रद्धा के साथ कही-सुनायी जाती।

तभी एक समाचार आया था मथुरा में। गुप्तचरों ने राजा को सूचना दी थी, फिर वह सूचना सामान्य प्रहरियों, सेवक-सेविकाओं तक बिखर गयी, एक और आश्चर्य चर्चा बनकर। बालक कृष्ण ने गोवर्धन अंगुली पर उठाकर सम्पूर्ण गोकुल के गोपों और पशुधन की रक्षा की थी। इन्द्र कोप-ग्रस्त हो गये थे और कृष्ण ने इन्द्रकोप का समुचित प्रत्युत्तर देकर इन्द्र को पराजय स्वीकारने पर बाध्य कर दिया था।

सुनकर कंस ने कहा था, "असंभव, यह नितांत असंभव है। हम जानते हैं कि उस दुष्ट कन्हैया को लेकर जन-सामान्य के बीच सुनियोजित रूप से इस तरह का प्रचार चल रहा है, जो उसे ईश्वर बना दे, पर हम कभी नहीं मानेंगे उसका यह देवरूप।"

प्राप्ति ने अवसर पाते ही ऋतु से पूछ लिया था, "क्यों री, यह गोवर्धन और कृष्ण को लेकर क्या सुन रही है हम?"

"आपने जो सुना है, सत्य ही सुना है देवि," ऋतु ने उत्तर दिया था, "कृष्ण ने गोवर्धन उठाकर इन्द्र के कोप से गोकुलवासियों की रक्षा की है।"

"सो कैसे?"

"आपकी तरह मैंने भी यह समाचार सुना ही है देवि," ऋतु ने कहा था, "यह भी सुना है कि यह कोप इन्द्र ने केवल अपनी पूजा बंद हो जाने के कारण किया था।"

"जो सुना है, मुझे वही सब सुना!" कहकर प्राप्ति ने सेविका पर दृष्टि गड़ा दी थी।

ऋतु ने जो कुछ कहा-सुनाया है, सुनकर बहुत विश्वसनीय नहीं लगता। उस समय भी नहीं लगा था और अब, जब बहुत समय बीत चुका है, रह-रहकर प्राप्ति उस सब पर सोचती है, तो सहसा विश्वास नहीं कर पाती। पलकें ही नहीं, माथा भी बोझिल अनुभव होने लगता है। कैसे उठाया होगा वह पर्वत ?

पर्वत उठाया था या सुबुद्धि दी थी ? निश्चित समय पर सुबुद्धि। सुन रखा था कृष्ण को लेकर--अतिबुद्धिमान है। जो टुकड़े-टुकड़े सूचनाएं मिली थी, उनके आधार पर ही प्राप्ति ने उस घटना का सम्पूर्ण अनुमान किया था। स्वयं से तर्क-वितर्क भी करती रही थी। क्या सच ही पर्वत उठाया गया होगा ?

या कि पर्वत की परिक्रमा का मार्ग सुझाया होगा ? इन्द्रकोप से बचाव ? कहते हैं कि उस क्षेत्र मे इतनी घनघोर वर्षा हुई थी, जिसने यमुना को बाढ़ से भर दिया था। रौद्रमती नदी वेग के साथ समस्त जड-चेतन को आत्मसात् कर लेने उमड़ पड़ी थी। तभी कृष्ण ने वह मार्ग दिया या कि गोवर्धन पर्वत उठाकर ही सम्पूर्ण गोकुलवासियो की रक्षा की ?

बहुत सूचनाएं जुटाकर प्राप्ति ने जो घटनावार चित्र मन में जुटाया था, उसे मस्तिष्क की तूलिका ने इस तरह अंकित किया :

कहते हैं कि इन्द्रपूजा का विरोध किया था कृष्ण ने। ऋतु ने बतलाया था कि गोवर्धन उठाने के पूर्व यही घटना घटी थी, फिर इस घटना को श्रद्धा ने प्रतीकात्मक ढंग से जोड़ा और कर्म को केवल संवाद की वस्तु बना दिया।

सदा की तरह गोप-समुदाय ने इन्द्रपूजा का भव्य आयोजन किया था। बालक कृष्ण ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया था, "यह क्या हो रहा है पितृ ?"

"देवाधिदेव इन्द्र की पूजा का आयोजन किया है, वत्स।" नन्द गोप तैयारियो मे व्यस्त थे। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने को थी। प्रतिवर्ष गोप-

गृहो में इस पूजा का आयोजन होता था।

"इन्द्र की पूजा क्यों ?" कृष्ण ने प्रश्न के भीतर से प्रश्न खोजा।

"वे जलदेव है, पुत्र।" नन्द बोले थे, "वही तो है, जो सूर्य की ज्वालाओं से झुलसी पृथ्वी की प्यास बुझाते है। उस पर धन-धान्य के जन्म का कारण बनते है। वह हम सबके प्रकृतिदेवता है, कान्हा। इसी कारण हम लोग उनका पूजन करके उन्हें प्रसन्न करते हैं।"

बात पूरी होते-न-होते बालक कृष्ण ठठाकर हंसे थे, पूछा, "इसका अर्थ तो यह हुआ पूज्य, कि इन्द्र के पुरुषार्थ की पूजा कर रहे हैं हम लोग।"

"निःसंदेह, वह प्रकृतिपुरुष हैं, उनके पुरुषार्थ को कौन अस्वीकार सकता है ?"

"और हम सबके पुरुषार्थ का क्या होगा, बाबा ?" कृष्ण ने प्रश्न और सूक्ष्म कर दिया।

"हमारा पुरुषार्थ ?" नन्द ने पूजा की तैयारी में व्यस्त हाथ थाम लिये थे। चकित होकर किशोरायु कृष्ण की ओर देखा, तर्क किया, "भला मानवीय पुरुषार्थ से क्या हो सकता है ? इन्द्र और मेघ की पूजा आवश्यक है। उनकी कृपा के बिना केवल पौरुष क्या करेगा ? मनुष्य के श्रम को फलदायी तो वही बनाते हैं। अतः उनकी पूजा-अर्चना आवश्यक है।"

कृष्ण ने गहरा श्वास लिया, कहा था, "पितृ, मैं नहीं जानता कि हम गोपों के लिए इन्द्र की कृपा-अकृपा कितनी महत्त्वपूर्ण है, कितनी नहीं। इतना अवश्य ही जानता हूं कि हम गोप वनवासी हैं और हमारे लिए हमारा श्रम, हमारी प्रकृति और हमारे वन ही पूज्य हैं। ये वन न हों तो हमारे पशु खायेंगे क्या ? ये पर्वत न हो, तो हमारे वन जुटेंगे कहाँ, अतः इनकी पूजा, रक्षा ही हमारा धर्म होना चाहिए, यही हमारा कर्म।"

अनेक गोप सहमे खड़े कृष्ण को देख रहे थे। कृष्ण कहे गये, "हम सभी का जन्म कर्म के कारण हुआ है और हम सब कर्म से ही जीवित रहते हैं, अतः कर्म का फल यदि हमें कहीं मिलना है, तो वह इन्द्र से नहीं, ईश्वर

से मिलना है। यदि हम कर्महीन हो जायें, तो ईश्वर क्या फल देगा? अतः हमारा पूजन, कर्म और धर्म केवल गोरक्षा और पूजा है। उचित तो यह होगा बाबा, कि इस समय हम सब इन्द्र की पूजा न करके इन वनों, पर्वतों और गौओं की पूजा करें। यही हमारे जीवन हैं, यही हमारी जीविका। अतः इनकी कृपा प्राप्त करने के लिए इनका पूजनाराधना होना अनिवार्य है।"

तर्क ने सहसा उन सभी को स्तब्ध कर दिया था। वे सब इस तरह देख रहे थे कृष्ण को, जैसे ज्ञान की ज्योति से साक्षात्कार कर रहे हों और कृष्ण के प्रभावी तर्क ने उन सभी को स्वीकारने पर बाध्य किया था कि कृष्ण ही सही है।

इस तरह इन्द्रपूजा सहसा गोवर्धन पूजा में बदल गयी थी और परिणाम था इन्द्रकोप। सब कहते थे कि वह अपमान इन्द्र के लिए असह्य हो गया था और इन्द्र ने निश्चय किया था कि उद्दंड कृष्ण के अनुगामी गोपों को ठीक तरह सबक दिया जाये। परिणाम हुआ था ब्रजक्षेत्र में भयावह वर्षा। इस वर्षा ने सभी कुछ अस्त-व्यस्त कर डाला था। यहां तक कि भयभीत गोप परिवार और उनके जीविका साधन पशु तक हताश हो उठे थे।

सब यही कुछ कहते थे। यही कुछ चर्चित हुआ था। अगली घटना से जुड़कर विलक्षण हो गया। पर वह अगली घटना क्या सचमुच स्वाभाविक थी? घटनाओं से क्रमबद्ध एक घटना या केवल सयोग? गोवर्धन-धारण की घटना को लेकर जो कुछ सुनने-जानने को मिला था वह भक्तिभाव से जोड़ दिया जाय, तो विस्मयकारी ही लगता है, किन्तु कृष्ण के ही कर्म-

ज्ञान और बुद्धिवाद में जुड़कर यह सहसा एक स्वाभाविक रूप ले लेता है।

व्रजक्षेत्र में भयावह वर्षा के समाचारों ने मथुरा को भी कम आन्दोलित नहीं किया था। प्राप्ति को स्मरण है, उस वर्षा के कारण हो रही जन-धन हानि की आशंकाओं को लेकर यादव प्रमुख एकत्र होकर महाराज की सभा में उपस्थित हुए थे। अक्रूर उनका नेतृत्व कर रहे थे। हाथ जोड़कर उन्होंने प्रार्थना की थी, "राजन्, इन्द्रकोप के कारण व्रजवासी बहुत भयभीत हो उठे हैं। गोकुल, वृन्दावन, बरसाना अनेक ग्रामक्षेत्र तो इतने प्रभावित हो गये हैं कि वहां किसी के जीवित बच पाने की आशा ही छोड़ी जा चुकी है। प्राणदायिनी यमुना सहसा उग्र होकर प्राणघातक शक्ति के साथ जनक्षेत्रों में उमड़ आयी है। असंख्य ग्रामपशु नष्ट हो जाने की आशंका है। इस अवसर पर यदि राज्य की ओर से कोई समुचित, सहायता, व्यवस्था न की गयी, तो घोर अनर्थ और महानाश हो जायेगा।"

"हां देव," एक अन्य प्रमुख उठ खड़े हुए थे, "वृद्धवर अक्रूर का परामर्श उचित ही है। इस अवसर पर व्रजवासियों को तुरन्त ही राज्य की ओर से सहायता, चिकित्सा आदि की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।"

कंस सुनते रहे, शान्त रहे। सभी की आंखें उनकी ओर जुड़ी थी। सब बड़ी आशा से उनके अनुकूल उत्तर की राह में व्यग्र थे। सहसा वह बोले थे, "आप सभी की सम्मति उचित है, निश्चय ही राज्य की ओर से नागरिकों को सहायता-सुविधा मिलनी चाहिए। आप सब आश्वस्त हों। आपके कथन से पूर्व ही इस दिशा में आदेश दे दिये गये है।" फिर उन्होंने केशी की ओर दृष्टि घुमायी थी, "क्यों सेनापति, हमारे आदेशानुसार कार्यारंभ हो चुका है या नहीं?"

"अब तक उचित सहायता उनके पास पहुंच चुकी होगी, प्रभु।" केशी बोले थे। प्राप्ति ने शंकित दृष्टि से राजा और सेनापति दोनों को ही देखा था। लगा था कि दृष्टि शब्दों से इतर कुछ और ही बोल रही है।

सभा समाप्त हो गयी थी। सेनापति और महामंत्री के साथ महाराज कंस विशेष चर्चा के लिए कक्ष में चले आये। रानियों ने आसन ग्रहण किये। कक्ष में प्रवेश के साथ ही कंस हँसे थे, "सहायता !" उन्होंने शब्द को इस उपहास के साथ वातावरण में उछाला था, जैसे समस्त सभासदों के मुँह पर थूक दिया हो, "उन दुष्टों की सहायता ? उन राज्यद्रोहियों की, जो गोप बालकों के कहे पर चलकर सदा ही राज्य और राजा की अवहेलना करते आये हैं ? अब वही उनकी रक्षा करेंगे। शासन से आशा किस कारण की जाती है ?"

प्राप्ति ने सुना था। लगा कि शरीर में भय से एक सिहरन हुई है। हे ईश्वर ! क्या मथुराधिपति इतने कठोर हो जायेंगे कि केवल उन उद्दंड बालकों के कारण असंख्य ब्रजवासियों को मृत्युमुख में जाते देखते रहें ? किन्तु यही हुआ था। राजा जैसे समूची स्थिति की ओर से इस तरह अन-देखा, अनसुना कर गये थे, जैसे वह सब विचारना उनका काम ही नहीं था। मनुष्य के नाते भी नहीं और प्राप्ति भयग्रस्त सोचती ही रही थी कि क्या वह सब उचित हुआ था ?

भयावह वर्षा ने मथुरा को भी कम प्रभावित नहीं किया था, किन्तु सर्वाधिक प्रभावित हुआ था ब्रजक्षेत्र। उसमें भी वृन्दावन और उससे मथुरा के अतिरिक्त जुड़ी बस्तियां। न कोई समाचार मिलता था उधर से न ही कोई समाचार जाने की स्थिति थी। समूचा सम्पर्क ही टूटा हुआ था। यमुना के उफान ने इर्द-गिर्द के रास्ते भी बन्द कर दिये।

प्राप्ति राजभवन में हर दिन नये-नये और डराने वाले समाचार सुनती रही थी। किसी बार ज्ञात होता था कि वेगवती यमुना में पशुओं के झुंड-के-झुंड मृतावस्था में बहे चले जा रहे हैं। किसी बार पता चलता कि बीच-बीच में अनेक स्त्री-पुरुषों के शव भी देखे गये। अनेक झोपड़ों को रौद्रा नदी ने तिनके-तिनके कर आत्मसात् कर लिया था। सब ओर त्राहिमाम्।

ज्ञान और बुद्धिवाद से जुड़कर यह सहसा एक स्वाभाविक रूप ले लेता है।

ब्रजक्षेत्र में भयावह वर्षा के समाचारों ने मथुरा को भी कम आन्दोलित नहीं किया था। प्राप्ति को स्मरण है, उस वर्षा के कारण हो रही जन-धन हानि की आशंकाओं को लेकर यादव प्रमुख एकत्र होकर महाराज की सभा में उपस्थित हुए थे। अक्रूर उनका नेतृत्व कर रहे थे। हाथ जोड़कर उन्होंने प्रार्थना की थी, "राजन्, इन्द्रकोप के कारण ब्रजवासी बहुत भयभीत हो उठे हैं। गोकुल, वृन्दावन, बरसाना अनेक ग्रामक्षेत्र तो इतने प्रभावित हो गये है कि वहां किसी के जीवित बच पाने की आशा ही छोड़ी जा चुकी है। प्राणदायिनी यमुना सहसा उग्र होकर प्राणघातक शक्ति के साथ जनक्षेत्रों में उमड़ आयी है। असंख्य ग्रामपशु नष्ट हो जाने की आशंका है। इस अवसर पर यदि राज्य की ओर से कोई समुचित, सहायता, व्यवस्था न की गयी, तो घोर अनर्थ और महानाश हो जायेगा।"

"हां देव," एक अन्य प्रमुख उठ खड़े हुए थे, "वृद्धवर अक्रूर का परामर्श उचित ही है। इस अवसर पर ब्रजवासियों को तुरन्त ही राज्य की ओर से सहायता, चिकित्सा आदि की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।"

कंस सुनते रहे, शान्त रहे। सभी की आंखें उनकी ओर जुड़ी थी। सब बड़ी आशा से उनके अनुकूल उत्तर की राह में व्यग्र थे। सहसा वह बोले थे, "आप सभी की सम्मति उचित है, निश्चय ही राज्य की ओर से नागरिकों को सहायता-सुविधा मिलनी चाहिए। आप सब आश्वस्त हों। आपके कथन से पूर्व ही इस दिशा में आदेश दे दिये गये हैं।" फिर उन्होंने केशी की ओर दृष्टि घुमायी थी, "क्यों सेनापति, हमारे आदेशानुसार कार्यारम्भ हो चुका है या नहीं?"

"अब तक उचित सहायता उनके पास पहुंच चुकी होगी, प्रभु।" केशी बोले थे। प्राप्ति ने शंकित दृष्टि से राजा और सेनापति दोनों को ही देखा था। लगा था कि दृष्टि शब्दों से इतर कुछ और ही बोल रही है।

सभा समाप्त हो गयी थी। सेनापति और महामंत्री के साथ महाराज कंस विशेष चर्चा के लिए कक्ष में चले आये। रानियों ने आसन ग्रहण किये। कक्ष में प्रवेश के साथ ही कंस हसे थे, "सहायता !" उन्होंने शब्द को इस उपहास के साथ वातावरण में उछाला था, जैसे समस्त सभासदों के मुह पर थूक दिया हो, "उन दुष्टो को सहायता ? उन राज्यद्रोहियों को, जो गोप बालकों के कहे पर चलकर सदा ही राज्य और राजा की अवहेलना करते आये हैं ? अब वही उनकी रक्षा करेंगे। शासन में आशा किस कारण की जाती है ?"

प्राप्ति ने सुना था। लगा कि शरीर में भय से एक सिहरन हुई है। हे ईश्वर ! क्या मथुराधिपति इतने कठोर हो जायेंगे कि केवल उन उद्दंड बालको के कारण असंख्य व्रजवासियो को मृत्युमुख मे जाते देखते रहें ? किन्तु यही हुआ था। राजा जैसे समूची स्थिति की ओर से इस तरह अनदेखा, अनसुना कर गये थे, जैसे वह सब विचारना उनका काम ही नही था। मनुष्य के नाते भी नही और प्राप्ति भयग्रस्त सोचती ही रही थी कि क्या वह सब उचित हुआ था ?

भयावह वर्षा ने मथुरा को भी कम प्रभावित नही किया था, किन्तु सर्वाधिक प्रभावित हुआ था व्रजक्षेत्र। उसमे भी वृन्दावन और उससे मथुरा के अतिरिक्त जुडी बस्तिया। न कोई समाचार मिलता था उधर से न ही कोई समाचार जाने की स्थिति थी। समूचा सम्पर्क ही टूटा हुआ था। यमुना के उफान ने इर्द-गिर्द के रास्ते भी बन्द कर दिये।

प्राप्ति राजभवन मे हर दिन नये-नये और डराने वाले समाचार सुनती रही थी। किसी बार ज्ञात होता था कि वेगवती यमुना में पशुओं के झुड-के-झुड मृतावस्था मे बहे चले जा रहे है। किसी बार पता चलता कि बीच-बीच में अनेक स्त्री-पुरुषो के शव भी देखे गये। अनेक झोपड़ों को रौद्र नदी ने तिनके-तिनके कर आत्मसात् कर लिया था। सब ओर त्राहिमाम्।

ज्ञान और बुद्धिवाद से जुड़कर यह सहसा एक स्वाभाविक रूप ले लेता है।

व्रजक्षेत्र में भयावह वर्षा के समाचारों ने मथुरा को भी कम आन्दोलित नहीं किया था। प्राप्ति को स्मरण है, उस वर्षा के कारण हो रही जन-धन हानि की आशंकाओं को लेकर यादव प्रमुख एकत्र होकर महाराज की सभा में उपस्थित हुए थे। अक्रूर उनका नेतृत्व कर रहे थे। हाथ जोड़कर उन्होंने प्रार्थना की थी, "राजन्, इन्द्रकोप के कारण व्रजवासी बहुत भयभीत हो उठे हैं। गोकुल, वृन्दावन, बरसाना अनेक ग्रामक्षेत्र तो इतने प्रभावित हो गये हैं कि वहां किसी के जीवित बच पाने की आशा ही छोड़ी जा चुकी है। प्राणदायिनी यमुना सहसा उग्र होकर प्राणघातक शक्ति के साथ जनक्षेत्रों में उमड़ आयी है। असंख्य ग्रामपशु नष्ट हो जाने की आशंका है। इस अवसर पर यदि राज्य की ओर से कोई समुचित, सहायता, व्यवस्था न की गयी, तो घोर अनर्थ और महानाश हो जायेगा।"

"हां देव," एक अन्य प्रमुख उठ खड़े हुए थे, "वृद्धवर अक्रूर का परामर्श उचित ही है। इस अवसर पर व्रजवासियों को तुरन्त ही राज्य की ओर से सहायता, चिकित्सा आदि की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।"

कंस सुनते रहे, शान्त रहे। सभी की आंखें उनकी ओर जुड़ी थीं। सब बड़ी आशा से उनके अनुकूल उत्तर की राह में व्यग्र थे। सहसा वह बोले थे, "आप सभी की सम्मति उचित है, निश्चय ही राज्य की ओर से नागरिकों को सहायता-सुविधा मिलनी चाहिए। आप सब आश्वस्त हों। आपके कथन से पूर्व ही इस दिशा में आदेश दे दिये गये हैं।" फिर उन्होंने केशी की ओर दृष्टि घुमायी थी, "क्यों सेनापति, हमारे आदेशानुसार कार्यारंभ हो चुका है या नहीं?"

"अब तक उचित सहायता उनके पास पहुंच चुकी होगी, प्रभु।" केशी बोले थे। प्राप्ति ने शंकित दृष्टि से राजा और सेनापति दोनों को ही देखा था। लगा था कि दृष्टि शब्दों से इतर कुछ और ही बोल रही है।

सभा समाप्त हो गयी थी। सेनापति और महामंत्री के साथ महाराज कंस विशेप चर्चा के लिए कक्ष मे चले आये। रानियों ने आसन ग्रहण किये। कक्ष मे प्रवेश के साथ ही कंस हमे थे, "सहायता !" उन्होने शब्द को इस उपहास के साथ वातावरण में उछाला था, जैसे समस्त सभासदों के मुह पर थूक दिया हो, "उन दुष्टो को सहायता ? उन राज्यद्रोहियों को, जो गोप बालकों के कहे पर चलकर सदा ही राज्य और राजा की अवहेलना करते आये हैं ? अब वही उनकी रक्षा करेंगे। शासन से आशा किस कारण की जाती है ?"

प्राप्ति ने सुना था। लगा कि शरीर में भय से एक सिहरन हुई है। हे ईश्वर ! क्या मथुराधिपति इतने कठोर हो जायेंगे कि केवल उन उद्दंड बालकों के कारण असंख्य ब्रजवासियों को मृत्युमुख में जाते देखते रहें ? किन्तु यही हुआ था। राजा जैसे समूची स्थिति की ओर से इस तरह अनदेखा, अनसुना कर गये थे, जैसे वह सब विचारना उनका काम ही नही था। मनुष्य के नाते भी नही और प्राप्ति भयग्रस्त सोचती ही रही थी कि क्या वह सब उचित हुआ था ?

भयावह वर्षा ने मथुरा को भी कम प्रभावित नही किया था, किन्तु सर्वाधिक प्रभावित हुआ था ब्रजक्षेत्र। उसमें भी वृन्दावन और उससे मथुरा के अतिरिक्त जुड़ी बस्तियां। न कोई समाचार मिलता था उधर से न ही कोई समाचार जाने की स्थिति थी। समूचा सम्पर्क ही टूटा हुआ था। यमुना के उफान ने इर्द-गिर्द के रास्ते भी बन्द कर दिये।

प्राप्ति राजभवन मे हर दिन नये-नये और डराने वाले समाचार सुनती रही थी। किसी वार ज्ञात होता था कि वेगवती यमुना मे पशुओ के झुंड-के-झुंड मृतावस्था में बहे चले जा रहे हैं। किसी बार पता चलता कि बीच-बीच में अनेक स्त्री-पुरुषो के शव भी देखे गये। अनेक झोपड़ों को रौद्रा नदी ने तिनके-तिनके कर आत्मसात् कर लिया था। सब ओर त्राहिमाम्।

मन होता कि राजा से कहें, "कुछ कीजिए, महाराज। राजसेवा में अनेक नौकाएं हैं, अनेक साधन भी हैं। उन सभी की सहायता से अब भी असंख्य लोगों की जीवन रक्षा की जा सकती है। किन्तु लगता कि व्यर्थ होगा। कठोर राजा कृष्ण-बलराम को लेकर पाषाणवत् थे। अब तक चलते आये क्रम को देखते हुए प्राप्ति जानती थी कि कुछ भी कहना ऐसे ही होगा, जैसे किसी लपट में कोई बूंद उछाली जाये। कंस की क्रोधाग्नि में सब कुछ स्वाहा हो जाने वाला था। हर उचित विचार, हर अनुकूल परामर्श, हर मानवीय संवेदना।

स्मरण आता है, तो मन पीड़ा और वेदना से भर उठता है। कभी-कभी लगता है कि जिस वैधव्य को ढो रही हैं, वह सब केवल पति के पापकर्म के कारण ही हुआ है। कितना अच्छा होता कि मथुराधिपति जान सकते कि वह केवल कृष्ण-बलराम के ही नहीं, सम्पूर्ण मनुष्यता के दोषी हो गये हैं और इस दोष का प्रायश्चित्त उन्हें ही नहीं, उन सबको करना होगा जो उनके साथी, सहयोगी और जीवन में सहभागी रहे हैं।

किन्तु वैसा कभी नहीं हो सका। जो हुआ, वह उनके बाद बहुतों ने भोगा है। किस-किस तरह, किन-किन स्तरों पर, कोई कभी नहीं नहीं जान सकेगा। कंस मर चुके हैं। वह कंस जो कालजय करना चाहते थे। कहा भी करते थे, "मैंने जय पा ली है काल पर।"

मन हंसने को भी होता है, रोने को भी। कैसी विडम्बना? कंस ने जीवन जय का विचार किया नहीं, कालजय के फेर में पड़े रहे। इस जय-मोह ने जीवन का जो श्रेष्ठ था, वह सब भी छीन लिया।

पर वह छिन रहा है—क्या कंस नहीं देख सकते थे? चाहते तो अवश्य देख लेते। प्राप्ति देख रही थी। हर उस क्षण, उस घटना के साथ देख रही थी, जिसके कारण धीमे-धीमे ही सही, पर राजा का यश, वीरत्व, श्रेष्ठता; दया, ममता सभी कुछ छिनता जा रहा था। राजनिवास में ही राजसेवक जब-जब समय पाया करते, दबे-मुंदे स्वरों में राजा की विपरीत बुद्धि को

लेकर क्षोभ व्यक्त करते थे। बहुत बार असंतोष और क्षोभ की यह जन-मन.स्थिति प्राप्ति ने भी सुनी-पहचानी थी।

तब सतर्क राजा कैसे नही समझ-देख सके? या कि राजा अपने ही आतंक के अंधकार मे गत, आगत सभी से दृष्टिहीन हो चुके थे? प्राप्ति के भीतर प्रश्न उमड आता है। उत्तर मागता हुआ प्रश्न।

.और उत्तर भी प्राप्ति के भीतर से आता है, 'निस्संदेह यही हुआ। अपने ही अवगुणों और दोषों के अंधेरे ने राजा को दर्शित के प्रति भी अदर्शित स्थिति तक पहुंचा दिया। ऐसा सदा ही होता है। यह चिरतन क्रम। क्रूर वुद्धि की अति मनुष्य को विवेकहीनता के अंधकूप में पहुचा देती है। यहां से उबर पाना असंभव।

कंस भी उसी अन्धकूप में थे। अन्धकूप मे न होते तब क्या देख न सकते कि उनके हर कदम की क्या जन-प्रतिक्रिया हो रही है?

ऋतु ने एक बार कहा था, "देवि, नीति-अनीति, ज्ञान-अज्ञान तो मैं नही जानती, किन्तु मन की पीडा व्यक्त कर रही हू। क्षमादान का आश्वासन दें, तो निवेदन करूं।"

"कहो?" प्राप्ति ने स्वीकृति दी थी।

आखें भरी हुई थी सेविका की। बोली थी, "इन्द्रकोप के कारण व्रज के जन-धन की वड़ी हानि आशंकित है। सभी मथुराधिपति की कृपा और सहायता की आशा लिए बैठे हैं और महाराज जाने किस कारण रुष्ट है कि उधर की ओर विचार ही नही कर रहे?"

एक गहरा श्वास लिया था प्राप्ति ने। चुप रही। चुप रही थी या कि नजरें चुरा ली थी सेविका से? कैसी विचित्र स्थिति थी वह। रानी होकर सेविका के समक्ष स्वयं को चोर की तरह दोषी अनुभव करने लगी थी।

वह कहे गयी—"आप चाहें तो महाराज अब भी व्रजवासियों की रक्षा कर सकते है। यही निवेदन करने आयी हूं, महारानी।" बोलते-बोलते दासी का स्वर कुछ गलने लगा था।

उत्तर देते हुए मन-ही-मन गली थी प्राप्ति। क्या कहे? या क्या कहना चाहिए उन्हें? बड़ी कोशिश करके उत्तर दे सकी थी, "तुम आश्वस्त हो, ऋतु, मैं अवसर पाते ही मथुराधिपति से अवश्य चर्चा करूंगी।"

प्रणाम करके दासी लौट गयी और प्राप्ति सोचती रही थी, क्या सच ही कहा है उन्होंने? महाराज कंस से कुछ कह सकेंगी वह? कह सकती, तो अब तक कितनी बार नहीं कह चुकी होती? किन-किन अवसरों पर नहीं टोका होता उन्हें?

टोका भी था। बहुत विनम्र, याचना के स्वरों में सम्मति भी दी थी, किन्तु राजतेज से भरे स्वर में कंस या तो उपेक्षा कर गये थे या फिर वक्र हंसी हंस दिये थे। प्राप्ति चुप हो गयी। चुप हो जाना उनकी नियति नहीं स्वाभिमान का एक बेबस रक्षा प्रयत्न था।

उस बार भी चाहा था कि ऋतु का निवेदन ज्यों का त्यों पहुंचाकर अपनी ओर से सम्मति के शब्द राजा तक कहें, पर लगा कि व्यर्थ होगा।

देख भी चुकी थी कि व्यर्थ हुआ है। वही बात प्राप्ति कहना चाहती थी, शूरसेन जनपद के अनेक यादव सामंतों ने जो बात विनम्रतापूर्वक राजा तक पहुंचायी थी। अक्रूर जैसे श्रेष्ठ और विवेकशील मंत्री भी बोले थे, किन्तु राजा असत्य बोलकर बचाव कर गये। प्राप्ति जैसे होंठ सिलकर किसी तसवीर की तरह वह सब देखती रही थी।

मथुरा में जन-आक्रोश बढ़ता-बढ़ता अब कंस के प्रति घृणा तक जा पहुंचा था। सामान्य जन उन्हें आर्य होते हुए भी राक्षस सम्बोधित करने लगे थे। उसी दृष्टि से देखते भी। कालजय के स्वप्न ने उन्हें मानव-जाति का शत्रु बना छोड़ा था।

कालजय या मृत्युभय? मृत्युभय कहना ही उचित होगा। इस मृत्युभय ने विवेकरिक्त कर दिया था उन्हें और उसी विवेकरिक्तता में असुरक्षित, आश्रयहीन वृंदावनवासियों को लेकर समाचार आया था, सम्पूर्ण क्षेत्र

बाढ से घिर चुका है। अब वहां किसी का भी बच पाना असंभव है। नदी का क्रोध जब शान्त होगा, तब महामारी और नाश ही शेष रह जायेगा।

अब तो राजा कोई सहायता भेजना चाहे, तो वह भी असंभव थी। व्रजवासियों के अनेक सगे-सम्बन्धी, जाति-बन्धु मथुरा जनपद के विभिन्न अंचलों में रहते थे। वे सब सहमे, भयभीत उस समय की प्रतीक्षा करने लगे थे, जब क्रुद्ध यमुना शान्त हो। सभी ने स्वयं को मानसिक रूप से नाश और संहार की उस भयावह लीला को देखने के लिए तैयार कर लिया था जो यमुना की बाढ समाप्त होते ही वृन्दावन में दीखनेवाली थी।

कौन जानता था कि चमत्कार होगा और वह चमत्कार भी उस अलौकिक बालक के माध्यम से होगा, जिसकी समाप्ति की कल्पना में कंस ने असख्य लोगों के लिए घातक निर्णय लिया था। बाढ में घिरे लोगों को कोई सहायता नहीं भेजी थी।

वह दिन अब भी प्राप्ति के मन में चित्रांकित है। चमत्कारपूर्ण अनुभव का वह दिन।

यमुना शान्त हुई। उनके शान्त होते ही मथुरा और दूरागत अंचलों में रहने वाले असंख्य लोग अशांत हो उठे। राज कर्मचारियों को बड़ी नाटकीयता और अभिनयप्रवणता के साथ महारज कंस ने सभा में आदेश दिया था, "तुरत व्रजक्षेत्र के शुभार्थ धन-धान्य, सहायता आदि भिजवायी जाये! वैद्य अपने चिकित्सालय खोलें, रोगियों की सेवा करें और जिन लोगों को भी आवश्यकता हो, उन्हें वस्त्र-खाद्यान्न आदि की सहायता दी जाये!"

"जो आज्ञा महाराज!" कहकर प्रद्युम्न ने अनेक लोग गोकुल, वृंदावन,

बरसाना की ओर दौड़ा दिये थे।

कंस प्रसन्न थे। बहुत आनंदित। ऐसे जैसे किसी सुसमाचार की बाट जोह रहे हों। अन्तःपुर में बहुत उल्लसित भाव से आये थे वह। प्राप्ति को अब भी स्मरण है उनकी मुखमुद्रा।

उतना प्रसन्न और आश्वस्त कभी देखा नहीं था उन्हें!

प्राप्ति को लगा था कि राजा भूलसुधार पर प्रसन्नचित्त है। मन का उद्वेग भी सहज हुआ है। यही कारण है कि सामान्य दीखते हैं। निश्चय किया था कि पति को अधिक प्रफुल्लित करने की चेष्टा करेंगी।

बात-बात में महाराज ने अपनी प्रसन्नता का कारण भी बतलाया था रानियों को। बोले थे, "देवियो, निस्सन्देह तुम लोग विचार रही होगी कि आज हम इतने प्रसन्नचित्त और सहज क्यों हैं?"

"यह रहस्य जानकर हम भी प्रसन्न होंगी, राजन्!" अस्ति ने कहा था।

राजा बोले, "उन दुष्ट गोप बालकों को प्रकृति ने ही दंडित कर दिया होगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि अब न वह चमत्कारी यशोदासुत शेष होगा, न ही देवकीसुत का भ्रम। निश्चय ही वह और उसके समर्थक इन्द्रकोप के कारण समाप्त हो चुके होंगे।" कंस ठहाका लगाकर हंस पड़े थे, "है न आनंद की बात?"

अस्ति हंसी, किन्तु न जाने क्यों प्राप्ति चाहकर भी प्रसन्नता व्यक्त नहीं कर सकी। उस क्षण की अनुभूति स्मरण है उसे। लगा था कि जड़ होकर रह गयी है। राजा इतने कठोर हो सकते हैं, कल्पना ही नहीं थी उसे।

क्या वह कठोरता-भर थी?

नहीं, वह थी शठता, घृणित क्रूरता। बालवध की चेष्टा अपने-आप में एक घृणित दोष था, किन्तु उससे भी घृणित था यह विचार कि किसी एक की हत्या करने के लिए अनेक का जीवन मृत्यु के कालमुख में धकेल

दिया जाए।

पर एक ही समाचार ने यह प्रसन्नता सहसा राजा से छीन ली थी। केवल छीनी ही नहीं थी, थप्पड़ मारकर राजा की क्रूरता को उत्तर दे दिया था। पराजय का वह क्षण और उसकी प्रतिक्रिया में महाराज कंस का प्रलाप इस समय भी प्राप्ति को याद है किन्तु उसके पूर्व वह समाचार जो राज्य की ओर से नाटकीय सहानुभूति जताने गये वैद्य और सेवक लेकर आये थे। उनके साथ आये थे प्रद्युम्न—चिन्तित, व्यग्र और बहुत सीमा तक पीड़ित।...

सभा में ही उपस्थित हुए थे वे सब।

सबसे पहले प्रद्युम्न ने और उसके बाद उन सभी ने विशाल सभागृह में प्रवेश किया था। सभी चौंक गये थे उन्हें देखकर। अभी एक दिन पूर्व ही तो उन्हें भेजा गया था राजनीति का क्रूर अभिनय करने? और वे इस तरह लौट आये हैं?

वे सब चुप थे। करीब-करीब पिटे हुए।

सभा के स्त्री-कक्ष में बैठी अस्ति और प्राप्ति एक-दूसरे को चकित होकर देखने लगी थीं।

राजा ने तीखी लगनेवाली दृष्टि से उन्हें देखा। वे क्रमशः अभिवादन करके एक ओर खड़े हो गये।

नतमस्तक होकर प्रद्युम्न बोले थे, "क्षमा, महाराज, गोकुल, वृन्दावन और बरसाना में सभी कुशल से हैं। यह ईश्वर कृपा ही हुई है कि वहां कोई क्षति नहीं हुई, किसी जीव के प्राण नहीं गए। सभी प्रसन्न हैं। रोग-महामारी आदि किसी तरह का कोई भय नहीं है।"

अजाने ही प्राप्ति पति की ओर देखने लगी थी। क्या प्रतिक्रिया हुई होगी उन पर? उनकी वह आनंद कल्पना? कालजय की सफलता में खिला आनंदित चेहरा? क्या बीता होगा उन पर?

और जो बीता था, वह सामने था। लगा था कि बहुत कुछ उमड़-

घुमड़ आया है उनके भीतर। घोर वर्षा की काली घटाओं से भी काला। शब्दहीन हो उठे थे वह। संभवतः उस क्षण स्वरहीन।'

सभा में उपस्थित अनेक सभासदों ने एकस्वर होकर चकित भाव से पूछा था, "यह तो चमत्कार हुआ, महामंत्री, तनिक बतलाइये तो ऐसा कैसे संभव हुआ? उस भयावह वर्षा और जल-प्रकोप में वे सब किस तरह सुरक्षित रहे, किस अदृश्य शक्ति ने उनकी रक्षा की? सभी कुछ विस्तार से बतलाइये हमें।"

कंस जबड़े भींचे हुए थे। महामन्त्री कुछ कहें, इसके पूर्व ही बोल पड़े थे वह, सभासदों के स्वर में स्वर मिलाते हुए, "हां, बतलाइये, विस्तार से बतलाइये। यह किस तरह संभव हुआ?"

और प्रत्येक शब्द को सहज संवारे हुए प्रद्युम्न बतलाने लगे थे, "हम सब कल संध्या समय ही बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में पहुंच गये थे यादवराज, राह में ध्वंसलीला देखते हुए। असंख्य वृक्ष उस क्षेत्र में धराशायी हो चुके हैं। बहुतेक घरों के स्थान पर खंडहर शेष हैं, किन्तु यह देखकर हम सभी चकित थे कि इस सारी ध्वंसलीला में किसी जीव का शव हमें क्यों नहीं मिल रहा है?" बोलते-बोलते प्रद्युम्न ने गले का थूक निगला था, "हां, वहां कोई शव शेष नहीं था।"

"शेष नहीं था या था ही नहीं?" राजा ने टोक दिया था उन्हें।

"मैं···मैं वही निवेदन करना चाहता हूं, प्रभु," प्रद्युम्न को लगा था कि सम्पूर्ण घटना के दर्शन ने उन्हें असहज कर दिया है। स्वर कांप उठता है और ठीक तरह शब्द सहेजे नहीं जाते। कुछ बोलें, इसके पहले ही सभा से कोई बुदबुदाहट उठी।

"यह···यह तो असंभव है कि घर निःशेष हो चुके हों, वन नष्ट-भ्रष्ट हो गये हों और किसी जीव के प्राण न गये हों।"

अनेक स्वर उठे। अनेक सम्मतियां। अनेक शंकाएं···

"अस्वाभाविक है।"

"बिल्कुल अस्वाभाविक।" कोई अन्य आवाज आयी।

"चमत्कार ही कहा जा सकता है इसे।"

"क्या उस कन्हैया के कारण कुछ हुआ, वृद्धवर?" किसी का प्रश्न आया।

राजा ने आदेशपूर्ण स्वर में कहा था, "शान्त हों सब।" फिर जब आदेश की प्रतिक्रिया में सन्नाटा बिखर गया, तब कंस पुन: बोले थे, "हां, आप सभी कुछ विस्तार के साथ वर्णन कीजिए, मन्त्रिवर।"

प्रद्युम्न ने इस बीच स्वयं को सहज कर लिया था। यह निश्चय भी कर चुके थे कि जो कुछ देखा है, अनुभव किया है, वह ज्यों का त्यों सुना देंगे। अपनी ओर से कुछ भी न तो जोड़ेंगे, न कम करेंगे। वह बोलने लगे थे और प्राप्ति उस सबको चित्रवत् देखने लगी थी।

ठीक तब से जब प्रद्युम्न उस जल-प्रभावित क्षेत्र में पहुंचे होंगे। यमुना पार, वृन्दावन क्षेत्र।

यह सब असहज और अस्वाभाविक लग रहा था, फिर भी सुखद। प्रद्युम्न चकित हुए थे। ऐसा क्यों लग रहा है? होना तो यह चाहिए था कि प्रकृति की उस विनाशलीला से मन ही नहीं, आत्मा तक सिहर जाती, पर वैसा न होकर अनुभव हो रहा था कि कुछ अदृश्य, अनजानी आनंद स्थिति है, जिसने मन-शरीर को संयत कर रखा है। शोक, मोह, चिन्ता और व्यग्रता से परे हो गया है मन।

दृष्टि जहां तक देख पाती थी, जल-प्रलय के कारण हुए नाश के अनेक दृश्य बिखरे हुए थे, किन्तु रोमांच न होता।

रोमांच हो रहा था यह सोचकर कि इतनी राह पार कर आये हैं, पर

कोई जीव-जन्तु-मनुष्य मृतावस्था में नहीं मिला। यह तो असंभव है कि हर जीव की देह को यमुना ही आत्मसात् कर गयी हो। कुछ तो रहे होंगे, जो धरती पर टूटे वृक्षों, झाड़ियों या विशाल पत्थरों की आड़ में अटके रह गये हों।

पर वैसा कुछ भी नहीं। प्रद्युम्न ने अपने साथ आये चिकित्सकों, वैद्यों और बड़ी मात्रा में खाद्यान्न तथा वस्त्रों की सहायता लानेवाले राज-कर्मचारियों की ओर देखा था। वह भी चकित थे। निस्सन्देह वे भी वही कुछ सोच रहे होंगे, जो प्रद्युम्न सोच रहे हैं। एक वैद्यवर बोल भी पड़े थे, "आश्चर्य है मंत्री महोदय, कोई जीवित, मृत आदमी ही नहीं दीखता, पशु-पक्षी कुछ भी नहीं। किधर गये व्रज में बसे जीव?"

"वही हम सोच रहे हैं।" वैद्यराज प्रद्युम्न ने गंभीर किन्तु विचारपूर्ण स्वर में उत्तर दिया था। सहसा वह थमे थे। दूर, पर्वत के ऊपर हलचल-सी देखी थी उन्होंने, पर स्पष्ट कुछ भी नहीं। ठिठके हुए देखते रह गये।

उन्हें थमे पाकर अन्य लोग भी थमे। दृष्टि की ओर दृष्टियां गयीं, फिर सब जुड़कर उसी दिशा में देखने लगे, जिधर महामंत्री की दृष्टि जा ठहरी थी। वह बुदबुदा रहे थे, "वहां पर्वत पर हलचल है। देखा आप लोगों ने?"

"हां, मंत्रिश्रेष्ठ", एकसाथ कई स्वरों ने समर्थन किया, पर समझ उस समय भी नहीं सके। प्रद्युम्न ने कहा था, "आप सभी उचित स्थान देखकर कुछ समय रुकें", फिर एक सेवक को देखा था उन्होंने, "तुम्हारा क्या नाम है सैनिक?"

"अविजित, महाराज।"

"तो तुम हमारे साथ आओ, अविजित।" प्रद्युम्न आगे हो लिए थे, जल और कीचड़ से बचते हुए, "हम देखकर आते हैं कि वहां कौन हैं और क्या हो रहा है?"

सैनिक उनके पीछे चल पड़ा।

वैद्यों और राजसेवकों का छोटा-सा काफिला वही सूखा स्थान देख-कर महामंत्री के आदेशानुसार प्रतीक्षा करने लगा।

लगभग एक पहर बाद महामंत्री लौटे। सन्ध्या होने लगी थी। उनके साथ कुछ गोप भी थे। चकित होकर मथुरा से आये सभी लोग उन्हें देखने लगे। महामंत्री ने कहा था, "आप सब भी वहीं चलें। सभी ब्रजवासी कुशलपूर्वक हैं, पशुधन भी।"

"किन्तु...।"

"यह किन्तु-परन्तु के विचार का विषय नहीं है।" प्रद्युम्न ने कहा था, "आइये सब लोग।"

गोपों ने राजकर्मचारियों को मार्ग दिखाया। कुछ ने कहा था, "आपका स्वागत है ब्रजक्षेत्र में। प्रसन्नता हुई कि आप यहां आये। हमारे अतिथि हैं आप सब। नंद बाबा वहां गोवर्धन पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

वे सब हक्के-बक्के-से चुपचाप गोपों के पीछे-पीछे चले जा रहे थे।

विशाल पर्वत का एक घेरा लेकर वे सब गोपों के साथ-साथ ऊंचाई पर जा पहुंचे थे। सभी चकित, सभी चुप। बहुत सीमा तक सहमे हुए भी। प्रद्युम्न मन-ही-मन सोच रहे थे कि उस अलौकिक कहे जानेवाले बालक के भी दर्शन होंगे। कृष्ण, कन्हैया, कान्हा, गोपाल कितने ही नामों से तो जाना जाने लगा था वह। मन विचित्र-सी उत्सुकता में भरा हुआ था। कैसा होगा वह ? और कैसा होगा उसका भाई करसकर्षण। कर सकर्षण की अद्भुत शक्ति को लेकर भी तो चमत्कारी कथाएं बिखरी हुई थीं मथुरा में।

लगा था कि कम सोच रहे है। जिस तरह गोप बालकों की चर्चा फैली थी, और जैसी चमत्कारी घटनाएं कही-सुनायी जाती थी, उन्होंने मथुरा-भर में ही नहीं दूर-दूर तक कृष्ण को लेकर उत्सुकतापूर्ण स्थिति बना दी थी। प्रद्युम्न जानते है कि राजकार्य के सम्बन्ध में जिन-जिन राज्यों

में आना-जाना पड़ता था, कोई न कोई कृष्ण को लेकर पूछ ही लिया करता था, "क्या है उस बालक में, जिसके कारण मथुराधिपति तक भय-भीत हो उठे हैं ? क्या सचमुच ही वह अलौकिक है ?"

उत्तर में प्रद्युम्न चिढ़कर कह देना चाहते थे, "अनर्गल !" पर कह न पाते। मन तैयार न होता था। लगता कि असत्य भाषण नहीं करेंगे। सत्य यही था कि बालक की ओर से जिस तरह घटनाएं घटी थी, उसी तरह उन्हें स्वीकारा जाये। वह स्वीकार और अस्वीकार के बीच उत्तर दे दिया करते। बहुत गोलमोल भाषा में कहते, "सब यही कहते हैं, किन्तु, मैंने स्वयं कोई चमत्कार नहीं देखा है।"

एक-दो तर्क और उछलते, पर प्रद्युम्न द्वारा बरती जानेवाली उपेक्षा विषय को समाप्त कर दिया करती। इसी तरह बहुतेरे राज्यों में कृष्ण को लेकर उठी बातों से किनारा किया था उन्होंने।

किन्तु इन सभी स्थितियों ने उस बालक के दर्शन का विचित्र-सा कौतूहल मन में जगा दिया था और अब, जब वह कुछ ही पलों बाद, या किसी भी क्षण में उस बालक को देखने वाले थे, हृदय गति तीव्र होने लगी थी। कैसा होगा वह ? कैसी होगी उसकी दृष्टि ? सुना था कि वह बहुत सम्मोहक है।

जी हुआ कि पूछ लें, "वह बहुचर्चित कृष्ण कहां है ?" किन्तु लगा, उचित न होगा। नंद बाबा के पास ले जाया गया था उन्हें। वृद्ध गोप प्रमुख ने उठकर उनकी अगवानी की, स्वागत में हाथ जोड़कर विनम्र भाव से खड़े हो गये, कहा, "स्वागत है, मंत्रिवर, महाराज की कृपा है कि उन्होंनेविपत्ति ग्रस्त गोकुलवासियों की चिन्ता की। विराजिए !"

आसन लगा दिये गये थे। प्रद्युम्न को न जाने क्यों लगा था कि दोषी हैं उन सबके। वह विनम्रता, सरलता और अतिथि सत्कार, सभी कुछ तो बाध्य कर रहे थे कि पापबोध अनुभव करें। ग्लानि होने लगी थी अपने-आप से। विचित्र-से तर्क जनम आये थे मन में, अपने-आप को ही दोषी

सिद्ध करते हुए। जैसे-तैसे मन का उद्वेग और आत्मबोध से उपजी ग्लानि को सहेजा। कहा था, "यह तो राजधर्म था गोपश्रेष्ठ, महाराज चाहते थे कि सहायता उचित समय पर मिल जाये, किन्तु घनघोर वर्षा ने सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये थे।"

नंद कुछ नहीं बोले। गोप कन्याओं ने कुछ फल-फूल महामंत्री के सामने ला रखे। दधि भी था। राजसेवक चकित हो उठे। इस विपत्ति में भी ये सब नितान्त सहज लग रहे थे, प्रसन्न और सन्तुष्ट भी।

कुछ पल चुप्पी रही, फिर प्रद्युम्न ने बात प्रारम्भ की थी, "महाराज ही नहीं, सभी मथुरावासी आप सबके प्रति बहुत चिन्तित थे। अनेक तो आशा ही छोड चुके थे कि अब इस क्षेत्र में कभी जीवन जैसी कोई वस्तु दिखेगी, किन्तु यहां आकर हम सभी को बहुत प्रसन्नता हुई है, वृद्धवर, आप सबकी कुशलता ने हमें आनंदित किया है!"

"यह सब तो ईश्वर कृपा है, महामंत्री।" नन्द ने उत्तर दिया था। स्वर में वही विनम्रता और निश्छलता बनाये रखी थी।

प्रद्युम्न ने उन्हें कुरेदा, "फिर भी जन-धन, पशुधन हानि तो हुई होगी। बिलकुल प्रलयवत् वातावरण था यहां।"

"नहीं मन्त्रिश्रेष्ठ, ऐसा कुछ नहीं हुआ।" नन्द बोले, "व्रज क्षेत्र के कुछ ग्रामवासियों को आर्थिक हानि तो हुई है, किंतु जीवन हानि नहीं हुई।"

"कैसे होती, महाराज।" सहसा बात बीच में ही काटकर एक गोप बालक आगे बढ़ आया था, "कन्हैया जो है हमारे पास। उसके रहते कोई हमारा कुछ भी नहीं बिगाड सकता। उसकी कृपा है कि हम जीवित हैं।"

कन्हैया यानी कान्हा, यानी कृष्ण। कुल मिलाकर वही चमत्कार, किंतु यह चमत्कार कैसे किया होगा उसने? प्रद्युम्न सकपकाये-से बैठे देखते रह गये। कुछ पल के लिए चुप्पी फिर बिखर गई। पूछा था, "तनिक बतलाओ तो बालक, कान्हा ने कैसे तुम सभी को बचाया?" स्वर में विचित्र-सा औत्सुक्य भरे हुए अनचाहे प्रद्युम्न ने पूछ लिया था।

वे सभी कौतूहल बरसाती दृष्टि टिकाये हुए थे उस गोप बालक पर। कुछ कहे, इसके पहले ही नन्द बाबा बोल पड़े थे, "यह सब तो संयोग है, महामंत्री, केवल बुद्धि की समयसूचकता का चमत्कार। कान्हा की ओर से हुआ, अतः सब कान्हा को ही विलक्षण कह रहे हैं।"

"इसीलिए तो जानने की इच्छा है हमारी।" प्रद्युम्न के स्वर में राजस जनम आया था। लगा था कि उनके स्वभाव के लिए प्रश्न के बीच में किसी तरह का प्रश्न आना स्वीकार्य नहीं है। नन्द और अन्य गोपों ने भी स्वर का वह भाव समझा, चुप हो रहे।

गोप बालक की ओर आखें लगा रखी थी प्रद्युम्न ने, कुरेदती हुई आंखें और बालक बोलने लगा था, ऐसे जैसे ईश्वर भजन कर रहा हो।

"वहां, वह जो बायी ओर वन दीखता है न पूज्य, हम सब गौएं चरा रहे थे। कान्हा भी था हमारे साथ।" गोप बालक कहने लगा था। सहसा बालक थम गया था, "आप विस्तार से ही सब सुनना-जानना चाहते हैं, तो मुझसे अधिक जानकारी उद्धव के पास है। कान्हा के साथ वही थे।" फिर स्वीकृति अस्वीकृति की बिना चिंता किये, बालक ने एक ओर शांत बैठे उद्धव को पुकारना प्रारम्भ कर दिया था, "उद्धव भैया, सुनाओ ना। कान्हा की तुमसे और क्या-क्या बातें हुई थी इस इन्द्रकोप से पूर्व ? महामंत्री वही सब जानना चाहते है।"

बालक की मुड़ी दृष्टि-दिशा में सभी ने आखें मोड़ दी। उद्धव अपनी जगह से उठकर उन सभी के पास आ बैठे। कुछ सहम और संकोच के साथ कहा था उन्होंने, "मेरा नाम उद्धव है, महामंत्री, वह जो स्थान दीखता है ना, वहां बिलकुल वृक्षों के पार; वहीं बैठे थे हम लोग। कान्हा, मैं, मनसुखा, कई लोग थे। गौएं दूर चर रही थी। कान्हा अपनी मुरली लिए सदा की तरह धुन निकाल रहे थे।"

"मुरली ? यह मुरली क्या होती है ?" प्रद्युम्न ने चकित होकर प्रश्न किया।

"कान्हा ने स्वयं ही एक वाद्ययंत्र बनाया है। बड़ी ही सुमधुर ध्वनि निकलती है उससे।" पास बैठा गोप बालक बोला था।

"अच्छा!" चकित होकर प्रद्युम्न उन्हें देखने लगे थे। एक बार इधर-उधर देखा, फिर पूछा, "कान्हा है कहां?"

"यहीं कहीं, आस-पास होगा।" किसी अन्य गोप बालक ने उत्तर दिया था, "कर संकर्षण भी नहीं है। निश्चित रूप से वह किसी काम से ही गये होंगे। आप लोग उस समय तक गोकुलवासियों की रक्षा की कथा सुनें।"

रात्रि गहरी हो गयी थी। उन सभी के विश्राम की व्यवस्था कर दी गोपों ने। वे पर्वत पर दूर-दूर तक जैसे एक गांव बसाकर ही रहने लगे थे। विभिन्न कन्दराएं भी थीं पर्वत पर। ये उनके निवास बन चुकी थीं। धरती से काफी ऊंचाई पर थे वे लोग।

कान्हा से उस रात्रि भेंट नहीं हो सकी थी। प्रद्युम्न ही नहीं उनके साथ मथुरा गये सभी लोग मन में एक ललक दबाये हुए जैसे-तैसे निद्रा की स्थिति तक पहुंच चुके थे। प्रद्युम्न स्वयं अर्धरात्रि तक जागते रहे थे। गोपों ने प्रकाश-व्यवस्था भी कर रखी थी; उसी का लाभ उठाकर महामंत्री इधर-उधर दृष्टि घुमाते। हो सकता है कि आस-पास ही कहीं दीख जाए वह।

पहचानते नहीं थे उसे, पर जितना सुन रखा था, उससे मन में एक विचार निश्चित हो चुका था। निश्चय ही उस बालक का व्यक्तित्व ऐसा होगा, जिसके दीखते ही मन कह उठेगा, यही है वह अद्भुत बालक।

निःसंदेह वह अद्भुत ही होगा। अद्भुत न होता, तो भला एक के बाद एक चमत्कार दिखाता।

कुछ समय पहले जब गोप बालक से इन्द्रकोप ने गोकुल रक्षा की बात सुनी, तो हर शब्द के साथ चकित होते गये थे। उसने कहा था, "मुरली बजाते-बजाते विशिष्ट ध्वनियां निकालकर विशिष्ट गौओं को पुकार सकता है कान्हा।"

"सो कैसे ?" प्रद्युम्न ने पूछ लिया था।

"ऐसे कि समझिये गौएं जूथ बनाकर खड़ी हुई हैं। कान्हा एक धुन बजायेगा, तो उनमें से कोई एक आएगी। वही, जिसे वह पुकार रहा होगा। दूसरी धुन पर कोई और जिसे पुकारा हो उसने।"

"आश्चर्य।"

"प्रारम्भ में हमें भी आश्चर्य होता था महामंत्री, किन्तु अब यह प्रतिदिन का नियम बन गया है अतः आश्चर्य नहीं होता।"

"फिर क्या हुआ ?"

"बस," गोप बालक ने कहा था, "हम लोग यही खेल खेल रहे थे कि सहसा कान्हा आकाश की ओर देखने लगे। उस समय हलकी बदली थी, किन्तु सहसा उन्होंने कहा, 'उद्धव, जाओ ! जल्दी करो ! गौओं को बुलाओ और तुरन्त गांव की ओर प्रस्थान करो।'"

"क्यों भला ?"

"वही तो बतला रहा हूं आपको।" उद्धव ने कहा था, "मैंने भी यही पूछा था उस समय, किन्तु कान्हा ने केवल कहा था, 'प्रश्न मत करो ! समय नहीं है। यदि गोकुल, गोपों और गौओं की रक्षा करनी है, तो तुरन्त गांव पहुंचो। तुम पशुधन साथ लेकर आओ और मैं गोकुल पहुंचता हूं।' फिर वह तीव्रगति से गोकुल की ओर चले गये थे। हमने भी उनकी आज्ञा का पालन किया। जल्दी ही समझ में आ गया था कि कान्हा ने वैसा क्यों किया है।"

"क्यों ?" उत्सुकता से भरे प्रद्युम्न कुरेदते जा रहे थे।

"हम अभी गोकुल पहुंचने के मार्ग में ही थे कि घनघोर घटाएं उमड़

आयी।" उद्धव चेहरे पर आश्चर्य उगाये हुए बड़बड़ाते रहे थे, "है ना महामंत्री, विस्मय की बात? कान्हा को उस हलकी-सी बदली से ही इतनी घनघोर वर्षा और उसके आगत परिणामो की जानकारी कैसे मिली होगी? पर उन्हें मिल गई थी। राह मे बलभद्र मिल गये थे हमें। थोडी देर पश्चात् कान्हा और गोकुलवासी स्त्री-पुरुष मिले। सभी अपना-अपना सामान लिये हुए तीव्र गति मे एक ओर बढे जा रहे थे। इसी गोवर्धन पर्वत की ओर। हम भी उन्ही के साथ हो लिये। तीव्रगति से आंधी प्रारम्भ हो गई थी उस समय तक। फिर वर्षारंभ हुई। ऐसी भीषण वर्षा कि लगता था पृथ्वी बचेगी ही नही। सब कुछ जल मे विलीन हो जायेगा। सब घबराये हुए थे। पशु भयभीत, बच्चे रोते हुए और स्त्रियां लगभग बेसुध होती हुई किंतु यशोदासुत निश्चित। ऐसे जैसे भयमुक्त हो। उन्हे किसी का भय नही था, न वर्तमान की चिंता, न आगत की कोई आशका। बस, तीव्रगति से बढे जा रहे थे आगे। बीच-बीच मे सभी को पुकारते, कहते कि शीघ्रता करें, आगे बढ़ें। बीच मे बलभद्र ने पूछा भी था उनसे, 'हम सब कहा जा रहे है कृष्ण?' वह बोले कि सुरक्षित स्थान पर पहुच रहे है। फिर थोड़ी देर बाद उन्होंने उस पर्वत स्थल की ओर, जिस पर हम सभी ने शरण पायी है, अगुली से सकेत करते हुए कहा था, 'वह जो गोवर्धन पर्वत दीख रहा है ना, वही हमारा रक्षक होगा। हम उसी का पूजन करते हैं।'"

"फिर क्या हुआ?"

"होता क्या, मंत्रिवर," उद्धव ने कहा, था "उस अंगुली की ही कृपा थी, जिसके कारण व्रजक्षेत्र के जीवमात्र ने जीवन पाया। इन्द्र के भयावह क्रोध से रक्षा हुई। कान्हा की वह अगुली थी, जिसने यह जीवनरक्षक स्थल बतलाया, जिसकी छाया मे हम आप सभी शान्तिपूर्वक और सुरक्षित विश्राम कर रहे है।"

"क्या तुम्हारे कन्हैया ने पूर्व मे यह स्थान देख रखा था?" प्रद्युम्न बाल की खाल निकालने लगे थे।

"कोई नहीं जानता, किन्तु इतना सब मानते हैं कि कन्हैया ने इस गोवर्धन धारण से ही सबकी रक्षा की है।" उद्धव ने श्रद्धापूर्वक उत्तर दिया था, "इस विशाल पर्वत की अनेक कन्दराओं में समाकर हम सब निर्द्वंद्व रहे हैं, पशुधन सुरक्षित रहा है और हम सब प्रकृति का यह कोप समय निकालने में सफल हुए हैं। एक और विस्मय की बात बतलाऊँ आपको। यहां किसी कन्दरा में किसी भी विषैले जीव-जन्तु से हमारी भेंट नहीं हुई। किसी को कोई क्षति नहीं पहुंची। है ना आश्चर्य की बात?"

न चाहते हुए भी प्रद्युम्न को स्वीकारना पड़ा था, "हाँ, निश्चय ही।"

गोप स्त्रियां, बालक-बालिकाएं उन सभी के लिए विश्राम व्यवस्था में जुट गये थे और थोड़ी देर बाद वे सभी विश्राम कर रहे थे।

प्रद्युम्न ने प्रयत्न किया था कि निद्रा आ जाये, पर देर तक वही सब सोचते रहे थे। मन में एक अदृश्य भय समा गया था। कहीं सच ही मथुराधिपति किसी अलौकिक से तो नहीं जूझ रहे हैं?

यदि जूझ रहे हैं, तब नाश निश्चित है।

कान्हा को देखा था भोर हुए। भय और सघन हो गया था मन में। वह लुभावनी छवि, सरल मुसकान, चपल दृष्टि और कोमल शरीर। मन हुआ था, विस्मय करें क्या यही वह 'अद्भुत' है, जिसकी चर्चा तक महा-शक्तिशाली कंस को सहमा देती है?

मन होता था, नकार दें, किन्तु लगा था, वैसा कर नहीं सकेंगे। पहली बार में ही वह उनके सामने विद्युत् की भांति उपस्थित हुआ था। मन, शरीर और आत्मा तक एक झकझोर देता हुआ।

निस्सन्देह अद्भुत ही नहीं, अलौकिक है वह। वैसा न होता, तो तर्क-शाली प्रद्युम्न सहसा निःशब्द बैठे देखते ही रह गये होते? उन्हें स्मरण है वह क्षण। सदा स्मरण रहेगा। कभी बिसरा नहीं सकेंगे।

कैसे बिसरा सकते हैं? मन, शरीर और आत्मा तक कौंध गये विद्युत्-प्रभाव को कैसे विस्मृत कर सकते हैं? फिर केवल उतना ही तो नहीं देखा-

समझा था उस कान्हा को। प्रद्युम्न ने मोहक शब्द भी सुने थे। लगा था कि किसी ने मंत्रमुग्ध करके उनको जीवन और जीवनहीनता से परे कर दिया है। केवल अनुभूति बना छोड़ा है उन्हें। ऐसा था वह क्षण।

"वृद्धवर को यशोदासुत कृष्ण का प्रणाम! "अनायास ही वह उनके सामने आ खड़ा हुआ था और वह चमत्कृत होकर देखते ही रह गये थे। यशोदासुत कृष्ण!···कृष्ण, कान्हा, कन्हैया, गोपाल!

अनेक नाम, एक रूप। एक में अनेक। यही है वह।

भोर हुए दैनंदिन जीवन क्रम से निवृत्त होकर अपने आसन पर बैठे ही थे कि वह आ खड़ा हुआ था। सावला-सलोना, गोल-गोल आखे, घुघराले बाल और मोरपंख माथे पर!

हतप्रभ देखते रह गये थे कुछ पल, फिर सहज हुए। कहा था, "सुखी रहो, नन्दलाल! बैठो!"

वह बैठ गया था शान्त, किन्तु लगता था कि तरगों का एक सूर्य बैठ गया है सामने। पल-पल चंचल, प्रतिक्षण असंख्य किरणों की तरह जीवंत और प्रभावित करने वाला पुंज। लगता था कि एक स्थान पर होते हुए भी, एक साथ सभी स्थानों पर उपस्थित है। विचित्र थी उसकी उपस्थिति की वह अनुभूति। यह पर्वत, आसन, वृक्ष, वायु, आकाश और धरती सभी जगह तो जैसे वह किरणों की तरह फैला हुआ है। वृद्ध प्रद्युम्न कुछ असहज हो उठे थे। इसी के विरुद्ध षड्यंत्र करते रहे है वह।

मुसकराते हुए मृदु शब्दो में कहा था उसने, "मंत्रिवर, मथुरा में सब कुशल तो है? यशस्वी महाराज और वीर सेनापति केशी आनंद से तो हैं? मेरी बड़ी इच्छा है कि मथुरा देखू। कैसी है मथुरा नगरी? सुना है, बहुत

सुदर है। भव्य भवन हैं वहा। सुगंधित वातावरण रहता है। प्रजाजन सदा ही सुखी रहते हैं। सब ओर आनंद-ही-आनंद है।"

"हा, सो तो है, पुत्र।" महामंत्री को जैसे अवश होकर कहना पड़ा था।

नंदसुत कुछ और कहे, इसके पूर्व ही एक पुकार आयी थी, "कान्हा! ···ओ, कान्हा!"

चपल बालक ने पुकार की दिशा में मुड़कर देखा था। कोई गोप बालक सूचना दे रहा था, "यशोदा मैया बुला रही हैं तुम्हें।"

और कोई कुछ कहे, इसके पहले ही बालक कन्हैया तीव्रगति से दूसरी ओर चला गया। जाने क्यों प्रद्युम्न के लिए वहां रुके रहना असंभव हो गया। उनके साथी भी उन्हीं की तरह व्यग्र बैठे थे। अचानक प्रद्युम्न बोले थे, "गोपप्रमुख को बुलाओ, अब हम सभी लोग प्रस्थान करेंगे।"

सेवक तुरत आज्ञापालन में एक ओर लपक पड़ा। थोड़ी देर बाद नन्द आ पहुंचे थे। करबद्ध, विनम्र। आते ही कहा था, "आज्ञा प्रभु?"

"हमें प्रसन्नता हुई नंद, कि आप सब कुशल से हैं।" प्रद्युम्न उठ खड़े हुए थे। उनके साथी भी। कहा था, "अब चलते हैं।"

"अतिथि सत्कार का थोड़ा-सा अवसर और देते महामंत्री, तो हम सभी गोप जनों को प्रसन्नता मिलती।"

"बस, बहुत सुख मिला इतने में ही।" प्रद्युम्न चल पड़े थे, "कोई विशेष आवश्यकता हो, तो निस्संकोच हमें सूचना भिजवाना।"

"अवश्य मंत्रिश्रेष्ठ।" नंद और गोपों का समूह उन्हें पर्वत से नीचे तक छोड़ने गया था।

और वे सब बिना मुड़े, देखे, तीव्रगति से मथुरा की ओर लौट पड़े थे। सारी राह उनमें परस्पर कोई बातचीत नहीं हुई थी। कुछ क्षणों के लिए कन्हैया का वह दर्शन जैसे उन सभी के भीतर एक सनसनी बनकर बिखरा रहा था।

उसी सनसनी को प्रद्युम्न ने वार्ता के बीच उजागर भी कर दिया था। सब सुनाकर कहा था, "वह बालक है विलक्षण। इसमें सन्देह मुझे भी नहीं रहा, राजन्।"

शब्द होठों से निकल गये, तब लगा था कि भूल हुई है। महामंत्री प्रद्युम्न कुछ सहम और संकोच के साथ राजा को देखने लगे थे और राजा उन्हें घूरते हुए, जैसे कह रहे हों, "तो तुम भी उस मायावी की माया में जकड़ गये, प्रद्युम्न? आश्चर्य है हमें।"

सिर झुका लिया था वृद्ध मंत्री ने। प्राप्ति ने सभा के स्त्री कक्ष से समूचे सभासदों पर हुए प्रभाव को देखा था। प्रद्युम्न ब्यौरा पूरा कर चुके थे। सहसा कंस ने कहा था, "इसका अर्थ यह हुआ कि बालक कृष्ण केवल मायावी ही नहीं, चतुर भी है। उसने व्रजवासियों को अपनी चतुरता से भी चमत्कृत कर रखा है।"

"किन्तु यह चतुरता बहुत शुभ हुई राजन्!" अक्रूर उठ खड़े हुए थे, "जिस चतुराई से अनेक जीवों के प्राण बच जाएं, उसके लिए प्रसन्नता ही व्यक्त करना चाहिये। बालक कृष्ण ने गोपों और उनकी स्त्रियों को जल-प्रकोप से बचाकर निस्सन्देह अपनी योग्यता दिखायी है।"

अन्य यादव स्वर भी उठे थे, "हां, अवश्य ही। इसकी सराहना की जानी चाहिये।"

प्राप्ति सहम गयी थी। पति की ओर देखा। वह स्वर की दिशा और चेहरे को इस तरह देख रहे थे जैसे उसी क्षण क्रोधाग्नि में भस्म कर डालेंगे, पर कूटनीति ने आश्चर्यजनक संयम के साथ उन्हें परिवर्तित किया। गहरी श्वास लेकर कहा था उन्होंने, "आप सभी की सम्मति उचित है। यशोदा-

पुत्र कृष्ण का सम्मान ही होना चाहिये।" सहसा चुप हो गये थे वह, जैसे कुछ सोचने लगे हों। फिर बोले थे, "हम विचार करेंगे कि उसे किस तरह पुरस्कृत और सम्मानित किया जाये।"

अनेक स्वरों ने सहजता के साथ राजा के विचार का स्वागत किया। हर्षध्वनि उठी, "महाराज की जय हो!"

सभा समाप्त हुई।

प्राप्ति सोचती हुई अन्तःपुर तक चली आयी थीं। क्या सच ही महाराज कंस उस गोप बालक को सम्मानित करेंगे?...विश्वास नहीं होता था। लगता था कि असत्य है।

कुछ दिनों तक कृष्ण, गोकुल या नंद को लेकर कोई चर्चा नहीं हुई थी। लगता ही नहीं था कि उस बारे में विचार किया जा रहा है। मथुराधिपति कंस भी मथुरा से बाहर गये हुए थे। जरासन्ध ने विशेष आमंत्रण भेजकर उन्हें बुलवाया था। सुना था कि मगधपति शीघ्र ही अन्य किसी सत्ता को अधीन करने जा रहे हैं। चेदिराज, पौंड्रक और मथुरा की शक्ति मगध की बहुत बड़ी सहायक थी।

ऋतु गोकुल-वृंदावन क्षेत्र में आती-जाती थी। जब-जब लौटती, कोई-न-कोई समाचार ले आती। कन्हैया ने इस बार इस तरह गोकुल-वासियों का शुभ किया, कन्हैया ने किसी विशेष व्यक्ति की विपत्ति में रक्षा की आदि।

ऐसे ही सरल भाव से बात करते-करते एक बार ऋतु बोल पड़ी थी, "गोकुलवासी मथुराधिपति के इस निर्णय से प्रसन्न हैं देवी, कि जल्दी ही कान्हा को राजसम्मान से विभूषित किया जायेगा।"

"तूने कहां सुना ?" चकित होकर महारानी ने पूछा था।

"सभी तो जानते है, महारानी !" ऋतु ने सहजता से कह दिया था, "महाराज ने कुछ समय पूर्व ही तो राजसभा में सभासदो की सम्मति पर कहा था। अनेक लोगों ने सुना है।"

और याद आ गया था प्राप्ति को। सच ही तो। कंस सभा मे यही बोले थे। गोवर्धन कथा को लेकर हुए विचार-विमर्श पर बात हुई थी।

"ऐसा आनंद गोकुलवासियों को कब तक मिल सकेगा, महारानी ?" ऋतु ने सरलभाव से प्रश्न किया था।

"हूं ?" प्राप्ति चौंक गयी। उससे अधिक चिन्तित हुई। क्या कहे ? महाराज कंस ने सभा मे 'यूंही' के भाव से जो कुछ कह दिया है, उसके सत्यासत्य की तहों तक नही पहुंचा जा सकता। जब तक इन शब्दों की किसी तह से प्राप्ति अपरिचित है; तब तक भला क्या कह सकती है ? कह देने से वह स्वयं को भी तो असत्यभाषिणी प्रमाणित कर देती और पति कस ?

उनके लिए सत्य, असत्य, गुण और दोष सभी कुछ पाप मुक्त है, केवल राजनीति। टालने के लिए कह दिया था, "क्या होना है, क्या नही, यह सब विषय महाराज के निर्णय पर ही है, ऋतु। वह लौटेंगे, तभी ज्ञात होगा कि क्या करना चाहते हैं।"

बात गोल हो गयी, किन्तु प्राप्ति जानती थी बात शब्दों-भर में भले ही खो दी गयी हो, उसे अनसुना, अनदेखा नही किया जा सकता था। कितनी ही बार स्वयं सोचने लगती थी, क्या सचमुच ही महाराज कंस कृष्ण को गोकुल रक्षा के कार्य पर राजसम्मान देने वाले हैं ?

विश्वास कर पाना असंभव था !

किन्तु अविश्वास भी नही कर सकी। करती ! किस आधार पर करती। कंस राजनीति के नाम पर छल, बल, और नेह-सरलता से लेकर ममता तक को दांव पर लगा सकते थे !

क्या सच ही वह ऐसा करेंगे ? असभव ! पर संभव भी है !

प्राप्ति हर एकांत में यही कुछ सोचती रही है। लगता है कि न सोचना चाह कर भी सोचने लगती है !

कभी-कभी अपने पर ही हंस पड़ने की इच्छा होती है। क्या सचमुच ही प्राप्ति को सोचना चाहिये ! सोच भी लें तब लाभ क्या होगा ? क्या वह पति को सही दिशा दे सकेगी और यह क्या निश्चित है कि जो वह सोचती हैं, वही सही होगा ?

मगधपति की सहायतार्थ गयी मथुरा की सेना विजयश्री प्राप्त करके लौटी थी। कंस बहुत प्रसन्न थे। उससे अधिक प्रसन्न थे जरासन्ध। सम्मान और आभार के साथ धन-धान्य देकर महाराज को विदा किया था। मथुरा मे भी राजा का भव्य स्वागत किया गया। प्रसन्नमन महाराज ने अन्तःपुर में महारानियों की ओर से तिलक-स्वागत स्वीकार किया। प्राप्ति को स्मरण है, उस दिन राजा बहुत ही सहज लग रहे थे। मन-दृष्टि, विचार सभी से सरल !

वह चेहरा स्मरण करती है और मन भीग उठता है। कितना अच्छा होता कि महाराज सदा ही उतने प्रसन्नचित्त और सहज रहते ? किन्तु कटुता, क्रूरता और छल-प्रपंच ने राजा के शत्रुओं से अधिक राजा की ही शांति छीन ली थी।

विडम्बना ! विडम्बना ही तो है कि मनुष्य सब कुछ होते हुए भी सब कुछ गंवाए रहे। ऐसे ही जैसे मनुष्य नदी तट पर खड़ा-खड़ा प्यासा ही रीत जाये। कंस के साथ यही कुछ हुआ था। उनके अपने कारण होता जा रहा था, उसी समय से होता रहा था, जब कालजय की मूर्खतापूर्ण और उद्दंड जिद ने उन्हें वशीभूत कर लिया।

जय-सुख मे केवल एक ही रात्रि सहज रह सके थे वह। अगले दिन राजसभा में उपस्थिति के साथ ही कृष्ण पुनः उनकी अशान्ति और असहजता का कारण बन गये थे। महामंत्री प्रद्युम्न ने सूचना दी थी,

"महाराज की जय हो ! देवर्षि नारद मथुरा आ रहे हैं। कुछ ही समय बाद वह नगरी में प्रवेश करेंगे।"

"आनंद का समाचार है, महामंत्री !" कंस प्रसन्न हुए थे, फिर आसन छोड़कर उठ खड़े हुए, "हम स्वयं नगरसीमा पर देवर्षि के स्वागतार्थ जायेंगे। तुरंत व्यवस्था की जाये।"

"महाराज की इच्छा हम पहले ही जानते थे।" महामंत्री ने उत्तर दिया था, "सभी व्यवस्थाएं की जा चुकी हैं।"

कंस और अन्य सभाजन ब्रह्मापुत्र का स्वागत करने नगरसीमा पर जा पहुंचे थे।

राजा आदरपूर्वक नारद को नगर में लाये। समुचित स्वागत-सम्मान किया, फिर करबद्ध होकर कुशल-समाचार पूछे। चपल ऋषि ने राजा को आशीर्वाद दिया, स्वागत-सम्मान पर प्रसन्नता प्रकट की, फिर तरह-तरह से मथुरा नगरी की भव्यता, व्यवस्था और प्रशासन की सराहना की। अन्त में कहा था, "बस, एक ही विचार से सदा चिन्तित रहता हूं, मथुराधिपति, यह भव्य राज्य और गौरवशाली यादव-साम्राज्य शीघ्र ही विपत्ति में पड़ने जा रहा है। यादव कुल के आन्तरिक कलह की अग्नि कहीं इसे झुलसा न डाले। इस विचार से मन खिन्न हो उठता है।"

नारद के शब्दों ने सभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों को बुरी तरह व्यग्र कर डाला। भयभीत और चिन्ताकुल दृष्टि से सभी ऋषि को देखते रह गये। महामंत्री प्रद्युम्न ने पूछा था, "ऐसा क्या हुआ, मुनिवर, कैसी विपत्ति?…और आप किस कुल-कलह की बात कर रहे हैं, कृपया स्पष्ट कहें।"

"हां, देवर्षि।" अक्रूर हाथ बांधकर उठ खड़े हुए थे, "आप सर्वज्ञ हैं। सृष्टि में कहां, किस कारण क्या कुछ घट रहा है या घटनेवाला है, आप भली प्रकार जानते हैं। कृपया सब कुछ विस्तारपूर्वक बतलाएं?"

नारद के होंटों पर चपल मुसकान तिरी, फिर दृष्टि वक्र हुई। कहा था, "राजन्, जनपद क्षेत्रों से निकलते हुए मुझे कुछ विचित्र सूचनाएं मिली हैं। लगता है कि गोकुलवासी नंद के यहां पुत्र नहीं, पुत्री जनमी थी। उसी पुत्री को तुम्हारी भगिनी देवकी के पुत्र से बदल दिया गया था। यह कैसे, किस तरह हुआ, मुझे ज्ञात नहीं है, पर यह हुआ, इतनी सूचना निश्चित है। वह पुत्र कृष्ण नामी वही बालक है, जिसने मथुरा के जनजीवन को प्रभावित किया है।"

कंस सुनते रहे। प्राप्ति देख रही थी कि उनका चेहरा तनाव में गहरे और खूब गहरे डूबता जा रहा है। सहसा वह मुड़ गये थे केशी की ओर, "यह क्या सुन रहे हैं हम सेनापति? यह कैसे संभव हुआ कि कारागार पर विश्वसनीय व्यक्तियों के होते हुए भी वसुदेव राज्य और राजा के प्रति इतना बड़ा विश्वासघात कर सके? कैसे संभव हुआ और कौन है इसका दोषी?"

सभा अनायास ही सन्नाटे और आतंक से भर उठी थी। मथुराधिपति के स्वर में धीमापन होते हुए भी क्रोध की ऐसी हुंकार थी, जिसके परिणाम को लेकर अनेक मन हिल गये। नारद वीणा लिए शान्त खड़े थे। राजा का क्रोध और सेनापति केशी के मुंह की पीलाई देखकर बोल पड़े, "नारायण! नारायण! अब वह विगत कथा लेकर समय व्यर्थ करने में कोई लाभ नहीं है, यादवेन्द्र, उचित तो यही होगा कि शीघ्र और त्वरितता के साथ आप अपनी रक्षा का उपाय कर सकें।"

"रक्षा? कैसी रक्षा?" कंस ने चकित होकर प्रश्न किया।

नारद आगे बढ़कर राजा के समीप पहुंच गये। धीमे स्वर में बोले, "आश्चर्य, इतनी सारी सूचना पाकर भी आप पूछ रहे हैं, कैसी रक्षा?

नारायण ! नारायण ! मथुराधिपति, मैं देख रहा हूं कि आपका जीवन संकट में है।"

"जीवन संकट में है ?" ऋषि के अधूरे शब्दों को ही थाम बैठे थे कंस। जितने चकित थे, उससे कहीं अधिक बेचैन। बोले, "यह क्या कह रहे हैं ऋषिवर ?"

"मैं सत्य कह रहा हूं, कंस", नारद गंभीर हुए, "स्पष्ट देख रहा हूं कि देवकी-वसुदेव का वह चपल पुत्र कृष्ण ही तुम्हारी मृत्यु बनने वाला है। अतः कहूंगा कि जितनी शीघ्रता से हो सके, उतनी शीघ्रता से उस बालक से मुक्ति प्राप्त कर लो।"*

सभाजन शान्त थे। सब ओर सन्नाटा। इस सन्नाटे को चीरते नारद के आरे जैसे शब्दों ने कंस पर उलटी प्रतिक्रिया की। सुनकर अनायास ही हंस पड़े, खूब ठठाकर। ऋषि ने आश्चर्य से पूछा था, "क्या हुआ राजन् ?"

"कुछ नहीं, महर्षि, आपके शब्दों पर हंसी आ गयी। यह दुधमुंहा गोप बालक मेरी मृत्यु है ! कभी-कभी आपको लेकर लोगों के कहे इस सच पर

---

* श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध में कहा गया है, 'नारद कंस के समीप आकर बोले कि जिस कन्या का तुमने वध किया, वह तो यशोदा की पुत्री थी और कृष्ण देवकी के पुत्र हैं। बलराम जी रोहिणी के पुत्र हैं। वसुदेव जी ने तुम्हारे भय से, अपने मित्र नन्दराय जी के यहां इनको पहुंचा दिया है और इन्हीं दोनों भाइयों ने तुम्हारे भेजे हुए सब अनुचरों को मार डाला है।'

संभवतः उस समय तक कंस को यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सका था कि गोप कृष्ण, वास्तव में वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं, जिन्हें बड़ी चतुराई और योजना के साथ कारागार में यशोदापुत्री माया से बदला गया था और जब यह रहस्य उद्घाटित हुआ तब कंस कृष्ण के प्रति बहुत क्रूर और हिंसक हो उठे। —लेखक

विश्वास करना पड़ता है कि आप साक्षात् आश्चर्य और आनंद हैं।" फिर वह हंसे।

नारद भी हंसे। जब कंस की हंसी का दौर समाप्त हुआ, तब ऋषि ने मुसकराते हुए कहा था, "नारायण! नारायण! नाशपूर्व मनुष्य की बुद्धि सचमुच विकृत हो जाती है।" गहरा श्वास लिया उन्होंने। वीणा का एक तार जोर से झनझनाकर वातावरण में लय बिखेर दी, कहा, "यादवपति, एक प्रश्न पूछूं?"

"आप तो स्वयं हर प्रश्न का उत्तर हैं देवर्षि, भला आपको कैसी जिज्ञासा?"

"अपने लिए नहीं, राजन्, आपके लिए। आपके शुभार्थ।" नारद ने कहा।

कंस ने प्रश्न किया, "मेरे शुभार्थ? कहिए, क्या कहना चाहते हैं?" चपल ब्रह्मपुत्र की ओर सभी सभासद् दृष्टि गड़ाये हुए थे। जानते थे कि वह किसी भी क्षण विद्युत् की तरह कौंधकर कोई बात कह सकते हैं। किसी भी क्षण मनुष्य को अवाक् स्थिति में छोड़कर अन्तर्धान हो सकते हैं।

नारद ने कहा था, "आपने संभवतः जलप्राणी कच्छप को नहीं देखा?"

"हुंह!" कंस उपेक्षा से बोले, "यह क्या कह रहे हैं आप? हमने असंख्य जलप्राणी देखे हैं। कच्छप तो बड़ा साधारण-सा प्राणी है। समान्यतः देखने को मिल जाता है।"

"जानकर आनंद हुआ, यादवेश्वर।" नारद बोले, "कच्छप जिस क्षण भयानुभव करता है, अथवा सुरक्षित होना चाहता है, वह अपना शीश शरीर के भीतर समा लेता है। समझता है कि सुरक्षित हुआ, पर अपने-आप में उसका यह मूर्खतापूर्ण प्रयास उसे रक्षित नहीं करता। यदि कोई चाहे, तो क्षणमात्र में उसे मनचाही मृत्यु दे सकता है। देखता हूं कि

आपकी भी यही स्थिति है।"

"ऋषिराज !" कंस उत्तेजित होकर लगभग चिल्ला पड़े थे, "आप हमारा अपमान कर रहे हैं।"

सभा में एक सहम बिखर गयी। उससे कहीं अधिक भय व्यक्त हुआ। प्राप्ति की अपनी हृदय-गति भी बढ़ गयी थी।

नारद ने सहज भाव से उत्तर दिया था, "नारायण ! नारायण ! यह क्या कह रहे हैं युवराज, आप जैसे पराक्रमी, वीर और विद्वान् को भला मैं साधारण ब्राह्मण क्योंकर अपमानित करूंगा ? कर भी नहीं सकता। जो कुछ कह रहा था, वह मात्र नीति का एक उदाहरण था। उसे उसी रूप में ग्रहण करें। यदि नहीं कर पा रहे हों, तब मैं जाता हूं। नारायण ! नारायण !" घुमक्कड़ मुनि ने अपने प्रिय वाद्ययंत्र से एक ध्वनि गुंजाई, चल पड़े।

कंस ने उन्हें रोक लिया था, "सुनिए तो महर्षि, तनिक रुकिए।"

नारद मुड़े, पूछा, "आपने मुझसे कुछ कहा ?"

"हां, देव।" राजा आसन से उतर आये थे। पास जा खड़े हुए। सब जानते थे कि नारद सूचनाओं के भंडार हैं। वह असत्य कभी नहीं बोलते। हां, उनके शब्दों को सुनकर समझना और उसके बाद कोई निर्णय लेना अवश्य ही कठिन कार्य है। जब-जब और जिसने भी इन शब्दों का मर्म नहीं जाना, वह अपने आगत का स्वयं ही दोषी हुआ।

राजा सम्मान सहित उन्हें आसन पर ले जा रहे थे, "क्षमा ब्रह्मर्षि, क्षमा ! संभवतः मुझसे ही भूल हुई। आप शान्त हों और बतलाएं कि आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"नारायण ! नारायण !" नारद ने आसन ग्रहण किया, फिर पूर्ववत् मीठे स्वर में कहा, "राजन्, जो कुछ मैं कह रहा हूं, उसे ध्यान से सुनें। यह समय उत्तेजनावश अनिर्णय की मानसिकता में उलझने का नहीं है।"

कंस ध्यान से नारद का चेहरा देखते रहे। शब्दशः सूचना और सम्मति को मन में उतारते हुए।

"उस चपल बालक कृष्ण को आपने देखा नहीं है, इसी कारण इस सहजता से उसे लेकर आप विचार कर रहे हैं।" नारद कहे गये थे—"वह बहुत मायावी है। असाधारण बुद्धि और क्षमताओं से पूर्ण। विद्वान् वही होता है, जो आगतभय को समय-पूर्व जान-समझकर उसे तुरंत नष्ट कर डाले। जितना शीघ्र हो सके, आप उस गोप बालक से मुक्ति पाइए। इसी में शुभ है, आगे आपकी जैसी इच्छा हो।" वह उठ पड़े थे, "नारायण ! नारायण !"

कंस ने उन्हें विदा करते हुए प्रणाम किया, कहा, "आप आश्वस्त हों, ऋषिवर, अब उस गोप बालक का वध किये बिना मुझे क्षण-भर भी चैन नहीं मिलेगा। आप उसे नष्ट हुआ ही समझें।"

"मुझे आपसे इसी उत्तर की आशा थी, मथुराधिपति।" नारद बाहर निकल गये। धीमे-धीमे शब्द उभरे, "नारायण ! नारायण !" फिर विलीन हो गये।

राजा कुछ पल चुपचाप बैठे सोचते रहे थे। ऐसे जैसे ऋषि के शब्दार्थ को समझने का प्रयत्न कर रहे हों, सहसा उन्होंने केशी से कहा था, "सेनापति, अब आप स्वयं जायें और उस दुष्ट बालक का वध करके मथुरा को भयमुक्त करें।"

केशी ने त्वरितता से उठकर शीश झुकाया, कहा, "जैसी आपकी आज्ञा महाराज।"

सभा विसर्जित हुई।

उत्तेजित, भिन्न और चिन्तित राजा अपने विशेष विचार-कक्ष में जा बैठे। रानियों ने अन्तःपुर की राह ली।

सेविका से ज्ञात हुआ था कि महाराज कंस अर्धरात्रि तक विश्राम के लिए नहीं गये थे। वह विचार-कक्ष में रहे और उसके बाद तुरंत क्रोधावेश से भरे हुए विशेष सेवकों और सैनिकों के साथ कहीं चले गये।

प्राप्ति चिन्तित हुई थी। कहां गये होंगे कंस? क्या वह स्वयं ही गोप बालक का वध करने गोकुल चले गये? नारद के शब्द स्मरण हो आये थे, "यह बालक असाधारण बुद्धि और क्षमताओं से पूर्ण है। बहुत मायावी है।" अज्ञात अनिष्ट की आशंका ने रानी को अस्त-व्यस्त कर दिया था। पलकें नहीं झपक सकी थीं। पति की अशान्ति से वह अशान्त हो उठती थीं। पति की पीड़ा उन्हें पीड़ित कर देती और नारद की भविष्यवाणी के बाद वह पति के जीवन के लिए ही चिन्तित हो गयी थीं।

एक-एक नाम याद आते थे उन्हें। भयावह और बलशाली असुरों के नाम। षड्यंत्रकारिणी पूतना का नाम। उन सभी को कृष्ण के हाथों मरना पड़ा था, फिर अकेले कंस?

लगता कि इस तरह विचारकर पति की क्षमता, शक्ति, वीरत्व और राजम का अपमान करती हैं, किन्तु सहज स्त्री स्वभाव उन्हें अशान्त किये रहता। नहीं, वह अपमान नहीं, केवल उस वरमाला के फूलों की सुगंधि को लेकर चिन्ता है, जो हर पतिव्रता के मन को सुगंधि से भरे रहती है। इस सुगंधि को खो देने का भय, पीड़ा का कारण!

उस रात्रि कितनी-कितनी बार शयनिका छोड़कर व्यग्र रानी उठकर बैठ रही थीं, स्मरण नहीं है। केवल इतना स्मरण है कि उन्होंने अनेक बार

उठकर पुकारा था, "कोई है !"

हर पुकार के साथ दासी सामने आ खड़ी होती, "आज्ञा, स्वामिनी !"

"महाराज लौटे ?"

"अब तक तो नहीं।"

"वह लौटें, वैसे ही मुझे सूचित करना।"

"जो आज्ञा, महारानी !"

हर बार यही शब्द, यही प्रश्न, यही आदेश। प्राप्ति को स्वयं ही स्मरण नहीं था कि कितना कुछ अस्वाभाविक और असहज व्यवहार कर रही हैं। एकमात्र चिन्ता, 'कहां गये होंगे कंस ? रात्रि का तीसरा पहर होने को आया, अब तक क्यों नहीं लौटे ?

भोर की पहली किरण जागी। प्राप्ति ने टूटते शरीर में पीड़ा अनुभव की। सम्पूर्ण रात्रि के जागरण ने शरीर को भी व्यथित कर दिया था। तभी दासी उपस्थित हुई थी।

प्राप्ति ने चौंककर उसे देखा।

दासी ने कहा था, "वह आ पहुंचे हैं, देवी।"

"कौन, महाराज ?" उत्साहित और हर्षित रानी उत्तेजना में खड़ी हो गयी थी।

"हां, देवी !" दासी ने सिर झुकाया। प्राप्ति ने एक ही साथ अनेक प्रश्न कर दिये थे, "कहां हैं वह ? विश्रांतिगृह में पहुंचे या नहीं ? या शयनकक्ष में हैं ? सहज और शान्त तो हैं ना ?"

"वह शान्तमन हैं, महारानी।" सेविका ने बतलाया था, "अभी-अभी द्वारपाल ने बतलाया था कि सेनापति केशी भी उनके साथ ही हैं। संभवतः कोई परामर्श कर रहे हैं महाराज।"

एक गहरी निःश्वास खींचकर अनायास ही बहुत हल्की हो गयी थी प्राप्ति। पलकें मूंद ली। देर बाद जाना था कि उन्हें गहरी और खूब गहरी निद्रा की आवश्यकता है। थोड़ी ही देर बाद सो रही।

देर दोपहर जागी थी वह। सभा में उपस्थित नहीं हो सकी। जागते ही महाराज को लेकर प्रश्न किया था। ज्ञात हुआ कि वह सभा में हैं।

अनायास ही एक प्रश्न कर लिया था सेविका से, "क्या हमें लेकर कोई पूछताछ कर रहे थे वह?"

"नहीं, देवी।" सेविका ने सिर झुकाकर उत्तर दिया था, "रात्रि-भर किसी राजकार्य में बहुत व्यस्त रहे महाराज, फिर प्रातः होते ही दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त होकर सभा में चले गये।"

प्राप्ति ने फिर कुछ नहीं पूछा था। जाने क्यों, उन्हें लगा था कि जो सुना है, उसमें दुख होने लगा है उन्हें। सोचग्रस्त दिनक्रम से जुड़ गयी थी।

शृंगार होते-होते तक अनेक सोचों से घिर गयी। क्या राजा केवल कृष्ण, राज्य, अपने जीवन-मरण, कुशल-अकुशल के अतिरिक्त कुछ नहीं सोच पाते? या उन्हें अवसर ही नहीं मिलता? अथवा महारानियों से उन्हें स्नेह ही नहीं है?

लगा था कि इनमें से सभी सत्य हैं। कितना अच्छा होता कि कुछ भी सत्य न होता। सत्य होती केवल राजकाज की व्यस्तता।

पर कटु सत्य यही कि प्राप्ति का विचारा हुआ सभी कुछ सत्य है। गहन पीड़ा से भर उठी थी वह। ज्ञात नहीं था कि क्या चाहा था उन्होंने या किस कारण पूछा था सेविका से, 'क्या हमें लेकर कुछ पूछ-ताछ कर रहे थे वह?'

संभवतः प्राप्ति के भीतर बैठी स्त्री की सहज अपेक्षा थी वह?

अपेक्षा या अधिकार?

केवल अधिकार! प्राप्ति ने अनुभव किया था कि यह अधिकार सहज मानवीय अपेक्षा है। ठीक उसी तरह, जिस तरह संवेदन-स्तर पर महाराज कंस ने यह अधिकार उससे प्राप्त किया है। विचित्र-सी रिक्तता बिखर गयी थी मन में।

लगा कि राजभवन, राजस, प्राप्ति का महारानी होना, जरासन्ध की

पुत्री होना, यह सब कुछ व्यर्थ है, अर्थहीन। जो अर्थ है, वह कहीं नहीं। प्राप्ति का असली अर्थ है उसका स्त्री होना। संवेदना का साक्षात् रूप। इस रूप का अस्वीकार सहना प्राप्ति ही नहीं, किसी भी स्त्री के लिए कठिन।

कठिन ही नहीं, असंभव।

क्या राजा पूछ नहीं सकते थे, 'कैसी हैं महारानी? किस कारण रात्रि-भर जागती रहीं? किस कारण देर सूर्योदय हुए भी सो रही हैं?'

किन्तु कुछ नहीं पूछा उन्होंने। स्मरण नहीं था शायद या कि स्मरण योग्य ही नहीं थी प्राप्ति अथवा स्मरण भी राजनीति के अर्थ में होता, तो अर्थवान् होता उनके लिए?

संवेदन भी राजनीति हो सकती है? प्राप्ति सोचने लगी थी। मन भूलभुलैया की अन्ध गुहा में भटकने लगा था। इस गुहा के असंख्य रास्ते, किंतु कोई भी राह कहीं नहीं पहुंचाती।

किसी राह का कोई द्वार नहीं। सब ओर केवल अंधकार।

कैसी पीड़ादायक स्थिति! शोकपूर्ण मन! सब कुछ मृत हुआ-सा। नेह, समर्पण, प्रेम और पूजा। लगा था कि प्राप्ति ने किसी जड़ पत्थर की शिला को पति रूप प्रदान कर दिया है।

किंतु पाषाण शिलाएं भी पूजा से जीवंत हो जाती हैं। कंस में वह भी नहीं। कितनी श्रद्धा, पूजा और समर्पण दिया है उन्हें, पर यह प्रभावहीन।

प्राप्ति के भीतर यह रिक्तता बिखरते-बिखरते धीमे-धीमे उन्हें भी पाषाण-शिला में परिवर्तित करने लगी थी। लगता था कि स्वयं के प्रति मृतानुभूति, दूसरों के प्रति भी मृतानुभूति होती जा रही है। सब कुछ इस तरह देखती हैं, जैसे घटकर भी अघटित है।

लगा था कि उन जैसी स्त्री के लिए एक यही स्थिति शुभ है, सुखद; इसी स्थिति मे शान्ति।

उस दिन इसी मनःस्थिति ने जकड़ा था उन्हें। फिर यह जकड़ गहरी हुई। हर अगली घटना उसे गहराती चली गयी।

वही मनःस्थिति थी, जब सदा की तरह उस रहस्यमय रात्रि के घटित का वर्णन सुना था उन्होने। जी हुआ था कि उत्सुकता जतलाए, उस रात्रि महाराज कंस ने क्रूरता से पूर्ण वे अमानवीय कृत्य कैसे किये? सुनकर घृणा भी करें।

पर न घृणा हुई थी, न ही कोई अन्य अनुभूति। केवल सुनती गयी थी वह। समाचार मिला था ऋतु से। राजभवन के बाहरी संसार की सूचनाएं वही देती थी उन्हें। उसी ने उस कालरात्रि की सम्पूर्ण कथा सुनायी थी। कहा था, "बहुत दुःखद कांड हुआ, महारानी जी, सम्पूर्ण नगर-क्षेत्र में उसी घटना को लेकर चर्चा है। ज्ञात नही कि किस तरह, किन सूत्रों से महाराज को अपने विरुद्ध हुए षड्यंत्र की जानकारी मिली थी और उन हतभाग्यों को वह कठोर दंड भोगना पड़ा!"

केवल टकटकी बांधे हुए रिक्त दृष्टि से ऋतु को देखे गयी थी वह। शांत और शिलावत्।

ऋतु ने सम्पूर्ण घटना कह सुनायी थी। उस रहस्यमय रात्रि का वर्णन, जो अन्त:पुर में अज्ञात था।

रात्रि के तीसरे पहर महाराज का रथ अचानक कारागृह जा पहुंचा था। सभी चकित थे, सभी सहमे हुए। उग्र और क्रोधी राजा किस कारण उतनी रात्रि गये आये होंगे? क्या किसी राजनीतिक बन्दी को स्वयं लेकर आये हैं? अथवा कोई अन्य कारण है?

एक प्रहरी दौड़ा हुआ मुख्य अधीक्षक के निवास पर पहुंचा था। गहरी निद्रा में खोये हुए थे वसुहोम। उन्हें जगाकर महाराज कंस के आ पहुंचने की सूचना दी गयी थी। वसुहोम तुरन्त तैयार हुए। पत्नी अनुराधा ने अचकचाकर उन्हें देखा था। लगता था कि वसुहोम राजा की असमय अगवाई के कारण बहुत बेचैन हो उठे हैं। जाने लगे तो हौले से हाथ थाम लिया था अनुराधा ने, "तनिक सावधान रहिएगा। न जाने राजा किस मन:स्थिति में हों?"

वसुहोम उत्तर न देकर मुड़े। अनुराधा को ढाढस दिलाती दृष्टि से देखा, फिर हौले से कंधा थपथपाकर द्वार की ओर बढ़ गये। अनुराधा उनके पीछे-पीछे द्वार तक गयी।

कंस का रथ कारावास के पास थमा हुआ था। अनुराधा ने देखा कि वसुहोम उसी दिशा में चले जा रहे थे। उनकी चाल में सहजता थी। गति में स्वाभाविकता।

वसुहोम ने रथ के पास पहुंचकर प्रणाम किया था। राजा रथ से उतरे। उपाधीक्षक कंटक पहले से उपस्थित थे। राजा दोनों के साथ कारावास की ओर बढ़ गये।

अनुराधा ने इससे आगे कुछ नहीं देखा। सोचा था कि महाराज किसी विशिष्ट बन्दी के लिए आये होंगे अथवा किसी विशिष्ट बन्दी को लाया जाने वाला होगा। लौटकर शयनगृह में चली गयी।

मथुराधिपति की मुद्रा जतला रही थी, तनाव मे है।

वसुहोम और कंटक ने समझ लिया था, कोई विशेष घटना हुई है। महाराज बोले थे, "वसुदेव और देवकी अब के बाद अधिक कठोर कष्ट झेलेंगे। हथकड़ियां, बेड़ियों की व्यवस्था की जाये।"

सहमकर रह गया कंटक। वसुदेव-देवकी के साथ हथकड़ी-बेड़ी की कल्पना ऐसे ही थी, जैसे फूलों को तोडकर राह मे बिछा दिया जाये। जीवंत फूलों के क्रमशः मरने की एक लम्बी क्रूर क्रिया। मन हुआ था कि राजाज्ञा का उल्लंघन कर दे। कह दें, 'नही, यह सब हमसे नहीं हो सकेगा, राजन्।' पर होठ सिले रह गये। कंस के कठोर, क्रोधी स्वभाव की कल्पना ने जी दहला दिया। चुपचाप आदेश-पालन करने में ही कुशल समझा। तुरन्त एक कारावास सैनिक को आज्ञा पालन के लिए पठाया।

वसुदेव-देवकी के कारागृह कक्ष को खोला गया। देखा कि एक ओर गहरी निद्रा मे सोये हुए है वे। राजा ने स्वयं पुकारकर उन्हें जगाया, "देवकी! वसुदेव!"

वे जागे। इस तरह जैसे दो भयभीत पंछी फड़फड़ायें हों, फिर शान्त होकर सामने खड़े विशालदेह कंस को देखा। कंस के चेहरे पर क्रूरतापूर्ण हिंस्र मुसकान बिखरी हुई थी। उन्होंने कहा था, "हमसे छल किया तुमने! समझते हो कि तुम यशोदा और नंद तक अपने अंश को पहुंचाकर निश्चित हो गये हो? किंतु ऐसा नही होगा। उस दुष्ट काल-कारण को हम वहां भी नष्ट कर देंगे।"

देवकी कुछ भी नही समझ सकी। नंद, यशोदा और उनका अपना अंश? नासमझ स्थिति में पति को देखने लगी थी वह। वसुदेव ने तुरंत ही समझ लिया था, अपने-आप पर वश किये रहना होगा। अनजान बनकर प्रश्न किया था उन्होंने, "यह सब क्या कह रहे हैं, यादवेन्द्र? नंद और यशोदा? फिर हमारा अंश? कुछ समझ नही आया।"

"अभिनय बन्द करो, वसुदेव!" कंस क्रोधावेश मे गरजने लगे थे,

"देवर्षि नारद से हमें सब कुछ ज्ञात हो गया है। आंधी-पानी से घिरी उस रात्रि के प्रकृति-कोप का लाभ उठाकर तुमने उस शिशु को गोकुल तक पहुंचा दिया था और सहायक हुए ये दुष्ट !" सहसा उन्होंने मुड़कर वसुहोम और कंटक को देखा था, "नंद गोप ने उसका पालन-पोषण किया, किंतु तुम लोग मूर्ख हो, जो यह समझते हो कि देवकीसुत को हम जीवित रहने का अवसर देंगे या कोई उसकी रक्षा कर सकेगा।"

देवकी चकित हुईं, उनका सुत? वह पति की ओर मुड़ गयी थी, "यह सब मैं क्या सुन रही हूं, यादवश्रेष्ठ? मेरा पुत्र? यशोदा और नंद के घर? वह वहां कैसे पहुंचा? किसने पहुंचाया?···और अगर वही मेरा पुत्र है, तब मेरी जिस कन्या का वध किया गया, वह कौन थी?" भावावेश में देवकी ने वसुदेव की कृशकाय बांहों को थाम लिया था। कंकालवत् उनकी अंगुलियां वसुदेव की बांहों पर कसी जा रही थीं। वह कांप रही थीं। प्रसन्नता और अनायास मिले समाचार की उत्तेजना से।

"हां, देवि!" कंस ने कहा था, "यह कुछ नहीं कह सकेंगे। पुत्रवती होते हुए तुम्हें पुत्रहीनता की पीड़ा झेलनी पड़ी है।" सहसा कंस बहिन के पास झुक आये थे। नाटकीय ढंग से कहा था उन्होंने, "यह तो बड़े क्रूर हैं, देवकी, जीवित पुत्र को मृत घोषित किये हुए भी किसी बार इन्हें न लज्जा आयी, न कष्ट हुआ।"

"धूर्त!" अनायास ही वसुहोम के होंठों से शब्द खिसक गये थे। आंखें घृणापूर्वक मथुराधिपति कंस को देख रही थीं। सद्यःजात बालकों का हत्यारा बहिन की भावनाओं से कैसे घिनौनी, हृदय छलनी कर देनेवाली पशु-क्रीड़ा कर रहा था! कंटक ने जबड़े कस लिये। कंस ने सैनिकों को आदेश दिया था कि वसुदेव-देवकी को हथकड़ी-बेड़ी पहना दी जाये।*

---

* 'कंस ने हथकड़ी-बेड़ी डालकर वसुदेव-देवकी को कैद कर लिया।' (श्री भागवतपुराण, दशम स्कंध)।
उपर्युक्त वर्णन उस समय किया गया है, जबकि नारद से कंस को कृष्ण

वसुदेव चुप रहे। देवकी ने अनेक बार पूछा था, "कहो ना कुछ। बोलो।" पर वह शांत रहे, गंभीर। किस शक्ति से अपने-आप को थामे रहे होंगे, कोई नहीं जानता, पर शक्ति सहेज रखी थी, यह निश्चित।

कंस ने कहा था, "तुम्हारे बोलने-न-बोलने, स्वीकारने-अस्वीकारने से अब कोई अन्तर नहीं पड़नेवाला, वसुदेव, मैं शीघ्र ही उस क्लेश से मुक्ति पा लूंगा!" फिर तेजी से वह मुड़ गये। देवकी रोती-बिलखती रही। उनके पीछे-पीछे वसुदेव और कंटक भी गये।

वे कारागृह के विशेष कक्ष में पहुंचे थे। यही इच्छा व्यक्त की थी उन्होंने। कंटक और वसुहोम समझ चुके थे—दंडित होंगे। क्रूर कंस का

के यशोदासुत न होने और देवकी-वसुदेव की सन्तान होने का पता चला, जबकि इसके पूर्व भी वर्णन आया है कि वसुदेव-देवकी के विवाहित होते ही कंस को भविष्यवाणी से उनकी आठवीं सन्तति के द्वारा वध किये जाने की सूचना मिली। कुछ परिच्छेदों के बाद कहा गया है कि 'नारद के चले जाने के बाद देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालकों को विष्णु के अंश जानकर, देवकी और वसुदेव को बंदीगृह में बंद कर पांवों में बेड़ी डाल दी।'

दो अलग-अलग स्थानों पर वर्णित एक ही प्रकार के वर्णन से लगता है कि पुराणकथा के घटनाक्रम में बहुत तारतम्यता नहीं है। नारद के आने का वर्णन कृष्ण द्वारा बहुत-से असुरों के वध के बाद आया है। लगता है कि इसके पूर्व तक कंस को देवकीसुत के यशोदापुत्र में परिवर्तित होने की योजना का पता नहीं चला था। यह तब पता चला, जबकि कृष्ण किशोरावस्था में पहुंच चुके थे। सूचना के माध्यम नारद ही बने। संभवतः देवकी-वसुदेव इस बीच सादा कारागृह में थे। सूचना पाकर कंस ने रुष्ट होकर उनके पैरों में बेड़ी, हाथों में हथकड़ी डाली। —लेखक

न्याय सबका जाना हुआ था, हत्या उनकी राजनीति। संभवतः वही उनका न्याय भी।

कारागृह के लम्बे, घुमावदार गलियारे पार करते हुए दोनों ने ही निश्चित कर लिया था कि असत्य नहीं बोलेंगे। कंस की क्रूरता को धिक्कारते हुए सत्य स्वीकार लेंगे। इस तरह धिक्कारेंगे कि उसे अपने-आप पर ग्लानि हो।

किंतु लगा था कि उद्दंड राजा से तर्क-वितर्क करके उसे अधिक उत्तेजित ही कर बैठेंगे। मन ने दूसरी करवट भी सोचा। क्या यह नहीं हो सकता कि चुपचाप राजा के सामने अपराध स्वीकार करके शांत रहें। संभव है कि राजा केवल कारावास ही दे।

किंतु इस संभव से अरुचि हुई थी उन्हें। लगा था कि मन का एक कोना सहसा धिक्कार से भर उठा है, छिः! भला अपराधी, हिंसक, क्रूर और अमानुष के प्रति चुप रहकर क्या वह मनुष्य धर्म निबाहेंगे? नहीं, ऐसा करना तो दोष होगा। कंस की दृष्टि में जो अपराध है, उनकी दृष्टि में वही उचित था। न्यायिक भी। शांत रहकर अपने-आप को अपराधी क्यों मानेंगे वे?

निश्चित कर लिया था कि कंस को अधिक कहने का अवसर ही नहीं देंगे। आरोप जड़ते ही उसे सहेज लिया जायेगा। दोनों ही आगे बढ़कर कहेंगे, "यदि यह अपराध है, महाराज, तो यह अपराध हमने किया है, किंतु हमारी दृष्टि में यह अपराध नहीं था।"

यही हुआ था।

राजा ने विशेष कक्ष में पहुंचकर सुलगता हुआ प्रश्न उछाल दिया था,

"क्या यह सत्य है अधीक्षक, तुमने प्रकृति-कोप की उस कालरात्रि में लाभ उठाकर वसुदेव-देवकी के पुत्र की रक्षा की ?"

"हां, महाराज।" वसुहोम ने निर्भीक उत्तर दिया।

सहसा उन्हें बांह से पीछे करके कटक आगे बढ़ आया था, "नहीं, यादवेन्द्र, अधीक्षक महोदय मुझे बचाने के लिए अपने ऊपर आरोप ले रहे हैं। सत्य तो यह है कि वसुदेव-देवकी के पुत्र को कारावास से निकलवाने में मैंने सहयोग किया, किंतु यह मैं नहीं जानता कि वह देवकीसुत यमुना पार से कहां ले जाया गया।"

"नहीं, महाराज !" वसुहोम ने कुछ कहना चाहा, पर कटक ने धीमे से कहा, "शपथ है तुम्हें वसुहोम ! शांत रहो !" फिर आगे बढ़ गया, "जो कुछ सत्य है, वही मैंने निवेदन किया है राजन्, अब जो भी राजदंड मिले, मैं उसको सिर-माथे लूंगा।" संवाद समाप्त करके उसने सिर झुका दिया।

कंस पल-भर के लिए विचलित हो उठे। कल्पना नहीं थी कि ताडना-प्रताड़ना के बिना अपराधी, अपराध स्वीकार लेंगे। एक पल के लिए धक्का भी लगा था उन्हें। क्या यह संभव है कि मनुष्य इस तरह त्याग-भावना से ओतःप्रोत हो जाये ? फिर लगा, उद्दंडता हुई है, राजशक्ति पर एक साधारण कर्मचारी ने उपहास से थूक दिया है। गहन अपमान और पीड़ा से भर उठे वह, किंतु शांत रहे। लगा था कि वसुहोम या कंटक के स्वीकार से आगे भी कुछ स्वीकार करवाना है और उसके लिए कठोरता से ही सही, अपने क्रोध पर वश करना होगा। दृष्टि क्रमशः वसुहोम और फिर कंटक पर लगाये रखी। इस तरह जैसे सब कुछ नोच-नोचकर जान-समझ लेना चाहते हों। अनेक प्रश्न···! किस तरह पहुंचाया गया कृष्ण को ?···और कौन-कौन इस षड्यंत्र में साथ थे ? नंद गोपबालक को लेने स्वयं आये या कि बालक को किसी अन्य माध्यम से भिजवाया गया ? अनेक प्रश्न ! लग रहा था कि कारा-गृह में संभवतः कोई भी मथुरापति के प्रति वफादार नहीं है। सबके भीतर विद्रोही भाव ही नहीं, विद्रोह पनप रहा है, षड्यन्त्रों में बदलता हुआ

विद्रोह!

वसुहोम और कटक अपराधी की तरह सिर झुकाए खड़े हुए थे।

कस ने कहा था, "तो तुमने उस षड्यन्त्र में भाग लिया?"

"नहीं, महाराज!" कंटक ने त्वरितता से उत्तर दिया, "उस योजना का आयोजन ही मैंने किया।"

"हूं।" कंस ने गहरा, उबलता हुआ श्वास खींचा, "इसका परिणाम जानते थे तुम?"

"हां, देव!" कंटक बोला।

वसुहोम के लिए असह्य हो गया था। कंटक सभी कुछ अपने सिर लिये चला जा रहा था, किन्तु शपथ ने होंठ सी दिये थे। न जाने कितनी बार थूक निगला, चुप रहा।

सहसा कंस बोले थे, "परिणाम का विचार किया था तुमने?"

"हां, महाराज।" कंटक ने साफ, तीखी आवाज में उत्तर दे दिया।

कस तिलमिला उठे थे। विद्युत गति से उठे और अगले ही क्षण खड्ग से उन्होंने सामने खड़े कटक का सिर झटके से उड़ा दिया।

वसुहोम ने पलकें मूद ली थीं। कितना भयावह दृश्य था वह। भौचक्के से कंटक को क्रुद्ध राजा की मुद्रा का एक कोना भी देखने का अवसर नहीं मिला होगा। सैनिक जैसे-तैसे खड़े रह सके थे। कंटक का धड़ कुछ क्षण गर्दन के कटे हिस्से से लहू का फव्वारा छोड़ता थमा रहा, फिर धरती पर बिखर गया।

वसुहोम की आंखें छलछला आयी थीं। शपथ अर्थहीन हो चुकी थी या कि मानस ही सहज नहीं रह गया था। उत्तेजित स्वर में बोला था वह, "क्षमा राजन्, कंटक के साथ-साथ मैं भी दोषी हूं। संभवतः सबसे अधिक दोषी मैं ही हूं। यदि वह सब दोष रहा हो तो।"

कैसे, किस शक्ति और साहस से वसुहोम ने वह सब कहा, वसुहोम को ही ज्ञात नहीं। केवल इतना जान रहा था कि जो कुछ कहा है, वही कहना

चाहिए था। वही उसका धर्म भी है।

कक्ष मे रक्त ही रक्त बिखर गया था। कटक के धड़ मे अब भी सिहरन हो रही थी। सिर रह-रहकर पृथ्वी से कुछ-कुछ उछलता हुआ लगता। गर्म लहू की धाराएं बही चली जा रही थी। सैनिको को बेसुधी-सी आने लगी। उस ओर से दृष्टि परे करके खड़े हो रहे।

कंस अब भी क्रोधोन्मत्त थे। वसुहोम के शब्द सुने थे उन्होने, पर आवेश बहुत थम चुका था। कंटक को वध करके लगता था कि मन बहुत शान्त हुआ है। बोले थे, "तुम्हे भी उपयुक्त दण्ड मिलेगा, वसुहोम।" फिर उन्होंने सैनिको को आदेश दिया था, "इस विश्वासघाती को कारागृह में डाल दो। हथकड़ियो-बेड़ियो से जकड कर इस नीच को कठोर दंड प्रक्रियाओं मे रखा जाये।" आगे कुछ न कहकर वह तीव्रगति से कक्ष के बाहर निकल गये थे।

वसुहोम खड़ा रहा। कटक के रक्त की अनेक धाराएं छोटे-छोटे कुडों जैसी जहा-तहां घेरे बनाकर ठहर गयी थी।

सैनिको ने आकर वसुहोम को घेर लिया।

पल-भर मे ही समाचार विद्युत् गति से सम्पूर्ण करावास में बिखर गया। महाराज कंस ने बड़ी निर्ममता के साथ कटक का वध कर दिया था। उपाधीक्षक को मृत्युदान देकर अधीक्षक को उन्होंने कारावास में डाल दिया।

अनुराधा रोती-बिलखती हुई, चंचला के निवास तक पहुची। सोचा था कि बेचारी सो रही होगी, पर यह देखकर चकित हुई कि चंचला पाषण-प्रतिमा की तरह बैठी हुई है। कठोर, मूर्ति-सी। भावहीन और

भयभीत होकर अनुराधा उसे देखती रह गयी थी। दृष्टि और मुद्रा ने पल-भर में जतला दिया था कि समाचार ने सरल स्त्री मन को आहत कर डाला है। सुधिहीनता तक जा पहुंची है चंचला।

"चंचला!" पल-भर पहले ठिठककर खड़ी रह गयी अनुराधा साहस संजोकर आगे बढ़ी थी। सांत्वना की हथेली उसने आहत चंचला के कन्धे पर रखी, किन्तु चंचला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसी तरह शान्त भाव से टकटकी लगाये, उसी ओर देखती रही, जिधर देखे जा रही थी।

"अपने-आप को संयत करो, चंचला।" अनुराधा ने भर्राये गले से कहा था। बहुत प्रयत्न किया था कि स्वर में रुलायी न उभरे, किन्तु संभव नहीं हो सका। न चाहते हुए भी गले से सिसकी उबल आयी थी। स्वर टूटे और कांच के दानों की तरह बिखरते हुए "शान्त हो, बहिन, ईश्वरेच्छा! वीर पति की पत्नी का यही धर्म है कि वह सत्य-संभाषण के कठोर परिणामों को झेलने को तैयार रहे।" आगे भी बहुत कुछ कहना चाहा था अनुराधा ने, किन्तु लगा कि शब्द कहीं खो गये हैं। उससे कहीं अधिक खो गया है स्वर। है भी तो सरल धारा की तरह नहीं। लहरों जैसा असहज, अशान्त, छटपटाता हुआ शब्द, पीड़ाजनक घटना की चट्टान से माथा पीटते हुए।

चंचला ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। एक गहरा श्वास लिया, फिर रिक्त, अश्रुहीन पुतलियां उठाकर अनुराधा की ओर देखा। खाली, सूनी निगाहें। अनुराधा को लगा था कि इन दृष्टियों में कंटक खड़ा हुआ है। धीमे-धीमे बादलों की तहों के पीछे धुंधलाता हुआ।

अनुराधा ने दोनों कन्धे थामकर उसे हृदय से लगा लिया। हौले-हौले कन्धे पर थपकियां देने लगी। शब्द नहीं थे उसके पास, पर यह स्पर्श अपने-आप में बहुत कुछ बोलता हुआ। सहसा चंचला फूटकर रो पड़ी थी। इतने जोर से जैसे असख्य लहरें एक साथ किसी चट्टान से टकराकर छार-छार

हो गयी हों। केवल धुएं की तरह वातावरण मे बिखरती हुई। सब कुछ गत, आगत धुंधलाती हुई।

अनुराधा भी सिसक पड़ीं। फिर यह सिसकियां सम्मिलित हो गयी। तभी किसी सैनिक ने सूचना दी थी, "अधीक्षक महोदय को कठोर कारावास में डाल दिया गया है। राज्यादेश है कि आप दोनों स्त्रियां निवास खाली करके नगर क्षेत्र में चली जायें।"

उन्होंने सुना। सूचना नहीं थी वह, आदेश था, किन्तु जो कुछ वे सह रही थीं, उसके सामने सब कुछ अस्तित्वहीन था, व्यर्थ।

अर्थहीनता की स्थिति मे शुभ-अशुभ सभी कुछ तो व्यर्थ हो जाता है?

कारावास के कंगूरों को पार करता हुआ समाचार नगर-क्षेत्र मे बिखर गया था। उसके साथ ही यह सूचना भी कि यशोदा और नन्द का पुत्र ही देवकी और वसुदेव की आठवी सन्तान है। क्रूर राजा से शूरसेन जनपद का मुक्तिदाता भी वही होगा। ऋतु बोली थी, "इस घटना के कारण नगर में महाराज को लेकर बहुत बुरी प्रतिक्रिया हुई है, देवी।" उसके स्वर मे सहानुभूति से अधिक चिन्ता थी। लगा था कि आगे भी कुछ कहना चाहती है वह, किन्तु कहते-कहते शब्दो को थाम लिया है।

प्राप्ति ने कुरेद दिया था उसे। कहा था, "कहो ऋतु, तुम आगे भी बतलाना चाहती हो ना? क्या कह रहे है नगरवासी? महाराज के इस कार्य को लेकर किस तरह की टिप्पणियां करते हैं वे? बतलाओ तो?"

"महारानी!" ऋतु के शब्द फूटे, किन्तु होंठ जैसे कांप गये थे। इससे आगे कुछ कह पाना ऋतु के लिए कठिन।

"आश्वस्त हो ऋतु, हम तुम पर न क्रोध करेंगी, न हीं तुम्हें किसी तरह दंडित करेंगी। निर्भय होकर कहो क्या कहना चाहती हो।"

सहमती हुई सेविका ने इधर-उधर देखा था, फिर बोल पड़ी, "देवी, वह जो कुछ कह रहे हैं, उसे इस अकिंचन सेविका के होंठ नही कह सकेंगे, किन्तु इतना निवेदन कर सकती हूं वे सब मथुराधिपति के प्रति

असन्तुष्ट और क्षुब्ध हैं। उनका विचार है कि महाराज आवेश में निर्दोष व्यक्तियों को दंडित कर रहे हैं। यह सब उनकी दृष्टि में अन्याय है।"

ऋतु चुप हो गयी और महारानी प्राप्ति अपने ही भीतर कहीं गुम। लगा था कि इन शब्दों ने मन-मस्तिष्क में किसी अज्ञात भय और पीड़ा को जन्म दिया है। किस कारण, क्योंकर और किस आशंका से यह प्रतिक्रिया हुई है, ज्ञात नहीं, पर इतना जान रही थी कि वह क्षण-क्षण असामान्य और असहज होती रही है। ऋतु चली गई थी। रानी अकेली हो गयीं, किन्तु इच्छा नहीं हुई कि इस एकान्त को तोड़ने के लिए किसी दास-दासी को बुलवा भेजें।

बुलवा भी लेंगी, तब क्या यह एकांत टूट जायेगा? इस पीड़ा और भय से मुक्त हो सकेंगी? असंभव।

टकटकी बांधे हुए हर बीतते पल में दिन के बदलते क्षण को देखती रही थीं। कब दोपहर बीती, कब सांझ हुई और कब भोजन कक्ष से बुलावा आ पहुंचा था, "भोजन तैयार है, देवी।"

प्राप्ति ने उत्तर दिया था, "नहीं, इच्छा नहीं है।"

दासी आश्चर्य से उन्हें देखती कुछ क्षण खड़ी रही। भोजन की इच्छा नहीं है, तब क्या वह अस्वस्थ है? पूछे, इसके पूर्व ही रानी ने कहा था, "खड़ी क्यों हो, जाओ! कह तो दिया है कि इच्छा नहीं है।"

दासी ने प्रणाम किया, लौट गयी।



पराक्रमी सेनापति स्वयं ही उस उद्दंड गोप बालक का वध करने गये हैं। यह सूचना पुरानी हो चुकी थी। आदेश भी। महाराज का मन, शरीर, बुद्धि सभी असहज होते जा रहे थे। कुछ दिनों में लगने लगा था

कि वह पल-प्रतिपल अविश्वसनीय और असहज प्रतिक्रियाओं से अपने-आप को अभिव्यक्त करने लगे हैं।

प्राप्ति ने कितनी ही दृष्टियों को पहचाना था। कितने ही लोगों को देखा। लगता था कि सबकी दृष्टि मे राजा के हर शब्द के प्रति एक विचित्र-सा कौतूहल और घृणा है। यह घृणा कहां, किस परिणाम पर पहुंचायेगी, सोचकर प्राप्ति का मन कांप उठता।

बुरे-बुरे स्वप्न आने लगे हैं। डरावने और सदमा डालने वाले। इन स्वप्नों से जितना भय लगता है, उसमे कही अधिक आगत के प्रति मन शंकाकुल होता जाता है। नारद की चेतावनी एक चुनौती की तरह प्रतिक्षण कानों मे गूंजती रहती है। इस चेतावनी में कंस की मृत्यु नही, प्राप्ति का वैधव्य लिखा है। क्या उचित हो रहा है, क्या अनुचित, यह भी मन के तर्क-वितर्क से परे होने लगा है। हर बार, हर स्थिति के प्रति एक ठगी, हकबकायी-सी दृष्टि लिए रिक्त मस्तिष्क खड़ी रहती है।

पति को देखती हैं, तो लगता है, जैसे किसी ऐसे खिलौने को देखती हैं, जो मन, बुद्धि से रिक्त होकर शारीरिक क्रियाएं करता जा रहा है। किसी बार यह क्रियाएं शरीर से होती हैं, किसी बार शब्द-रूप में ध्वनि से। हर क्रिया, हर चेष्टा, हर राजकार्य, हर अभीष्ट उनके लिए एक ही रह गया है, यशोदापालित कृष्ण की मृत्यु! उसकी समाप्ति! उसका अंत! सब कुछ केवल यही।

क्या मनुष्य जीवन किसी एक क्रूर लक्ष्य के प्रति समर्पित होता है?

किन्तु कंस का लक्ष्य, जीवन, विश्वास और सफलता सभी कुछ एकमात्र अभीष्ट, यशोदापुत्र कृष्ण और बलराम का नाश।

केशी ! उन्हीं की राह देख रहे हैं कंस ! मात्र कंस ही क्यों, सभी। राजनिवास के साधारण व्यक्तियों से असाधारण तक। शूरसेन जनपद के सामंतों से लेकर जन-सामान्य तक।

सुना था कि केशी के जाते समय यादवपति कंस बोले थे, "सेना की एक टुकड़ी भी साथ ले जाओ, सेनापति, सुना है कि वे दुष्ट गोप बालक छल-बल से ही अब तक वीरों का वध करते रहे हैं।"

"क्षमा देव," केशी ने उत्तर दिया था, "आपकी कृपा और आशीर्वाद से यह सेवक इतना सक्षम है कि वह छल-बल को समाप्त कर सके ! आसुरी विद्या का किंचित ज्ञान मुझे भी है राजन्, आप आश्वस्त हों। उन दुष्ट गोपों के नाश का समाचार आपको शीघ्र ही मिलेगा।" उन्होंने राजा को प्रणाम किया था, "मुझे प्रस्थान की आज्ञा दें।"

"विजयी हो, सेनापति !" कंस ने तिलक कर दिया था उनका और केशी चले गये।

दो दिन और दो रातें बीत चुकी है। सेनापति का कोई समाचार नहीं मिला है। कहां हैं, क्या हुआ है गोकुल में? गोप बालक हत हुए अथवा सेनापति केशी को ही किसी कुअवसर से साक्षात् करना पड़ा?

सब कुछ अज्ञात। केशी के पीछे राजा ने गुप्तचर भेजे थे। वही समाचार लायेंगे कि क्या हुआ वहां? क्या कुछ घटा? कितना शुभ हुआ, कितना अशुभ? कितनी सफलता मिली, कितनी असफलता?

समाचार आया था रात्रि गये। उसके पहले महाराज कंस कुछ सहज और प्रसन्न दीखे थे। विश्वास था उन्हें कि शक्तिशाली केशी निश्चय ही उन गोपों का संहार कर चुके होंगे। बहुत दिनों बाद उसी दिन प्राप्ति के पास पहुंचे थे वह।

वह क्षण प्राप्ति को स्मरण है। कभी विस्मृत नहीं होगा। जब तक श्वास और शरीर का यह पीड़ाजनक संबंध बना हुआ है, विस्मृत नहीं होगा। कैसे हो सकता है? कम-से-कम जीवन की सबसे बड़ी घटनाओं को

कैसे कोई विस्मृत कर सकता है !

घटना घटी थी अर्द्धरात्रि को। बड़े संकोच के साथ शयन कक्ष की सेविका ने द्वार पर आहट करके महाराज कंस और रानी प्राप्ति की निद्रा भंग की थी। सबसे पहले उठी थी प्राप्ति। द्वार खोला। देखा कि भयभीत सेविका सामने खड़ी है। माथे पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं। रानी कुछ पूछ सकें, इसके पहले ही उसने लगभग रुआंसे स्वर में कहा था, "देवि, कोई दुःखद समाचार लेकर गोकुल से विशेष गुप्तचर लौटे हैं। महाराज का विशेष सेवक वीरभद्र भी उन्हीं के साथ है। उनका कहना है कि यादवेन्द्र को जगाया जाये। मैं इस धृष्टता के लिए बाध्य थी। मुझे क्षमा करें!'

प्राप्ति समझ गयी थी, संभवतः केशी ''! इसी बीच महाराज का स्वर उभरा था शय्या से, "क्या है देवी ?"

प्राप्ति कुछ कह सकें, इसके पूर्व ही करबद्ध दासी आगे बढ़ आयी। सिर झुकाकर निवेदन किया था, "क्षमा महाराज, इस समय आप सभी को कष्ट देने का दोष मुझसे हुआ है। गोकुल से वीरभद्र आये हैं। कोई विशेष राजनयिक समाचार है। उन्होंने भेंट की आज्ञा चाही है।"

प्रसन्न हुए कंस। कहा, "उन्हें तुरन्त उपस्थित करो, सेविके, उनके आने से हम प्रसन्न हुए।"

प्राप्ति सेविका से समाचार की एक दुर्लभ कड़ी पाकर अच्छी तरह समझ चुकी थी कि यह प्रसन्नता कितनी क्षणिक होगी। एक ओर हो गयी। सेविका बाहर जा चुकी थी। राजा आसन पर बैठे हुए थे, आलस्य फेंकते हुए।

वीरभद्र दो सेवकों के साथ प्रस्तुत हुआ। अभिवादन के पश्चात् उसने

कहा था, "क्षमा स्वामी, बहुत बुरा समाचार है। सेनापति केशी गोप कृष्ण के हाथों वधित हुए।"

"असम्भव!" राजा सहसा चौंक पड़े थे। उनके अगले शब्द काँप गये थे, "कैसे? यह सब कैसे हुआ?" उनके स्वर ही नहीं, चेहरे पर भी हवाइयां उड़ने लगी थीं। जिसकी शक्ति और सामर्थ्य पर पूरा विश्वास था, वही इस तरह मारा जायेगा, कैसे सहते? प्राप्ति को लगा था कि विश्वास नहीं कर पा रहे हैं।

वीरभद्र ने कहा था, "हमें भी असम्भव लगा था, महाराज, किन्तु जिस तरह उस बालक ने असाधारण शक्ति से महापराक्रमी केशी को हत किया, वह अन्ततः किसी मनुष्य जैसा कार्य नहीं लगता था।" फिर वीरभद्र ने सम्पूर्ण केशी-वध की कथा कह सुनायी थी। कहा था, "राजन्, आपके आदेशानुसार हम महावीर सेनापति से एक विशिष्ट दूरी बनाये रखकर स्वयं देख रहे थे।"

वह वर्णन।

शब्दशः स्मरण है प्राप्ति को। उसके साथ ही अपने ऊपर हुई उस क्षण की प्रतिक्रिया भी स्मरण है। जाने क्यों, आशंकित, भयभीत मन चीख-चीखकर प्राप्ति से ही कह उठा था, "निश्चित, महाराज कंस का अन्त भी निश्चित हुआ और उसके साथ ही निश्चित हुआ अस्ति और प्राप्ति का वैधव्य।"

कुछ समय से थमा रह गया मस्तिष्क सहसा सक्रिय होकर पति को थाम लेना चाहता था। जी होता था कि सेवकों के जाते ही राजा से कहे, "नहीं स्वामी, नहीं, उन गोप बालकों के वध का विचार त्याग दीजिए।

निस्सन्देह वह अलौकिक ही होंगे, जो सामान्य मानव से इतर कर्म कर रहे हैं।"

किंतु व्यर्थ ! प्राप्ति सोच ही सकी। कार्य रूप में परिणत करना असंभव था। मथुराधिपति उत्तेजना के उस शिखर पर पहुंच चुके थे जो अग्नि से दावानल मे परिवर्तित हो जाती है; बुद्धि, विवेक, ज्ञान सभी मानव स्रोतो को सुखाती हुई।

वीरभद्र ने बतलाया था कि दुर्दान्त केशी जिस क्षण वायुवेग से नदसुत पर प्रहार करने बढ़े थे, उसी क्षण बालक कृष्ण असामान्य गति, वेग और चपलता के साथ उनसे जूझ गया था। उसने पलमात्र में अश्वारूढ केशी को धरती पर पटक दिया था। केशी उछले, पर उछलने के साथ ही कृष्ण की कोमल दीखने वाली हथेलियों ने लौह धातु के किसी पंजे की जकड़ से उनके दोनो पैर थाम लिये, फिर जोरों से आकाश की ओर उछाला, घुमाया और चक्कर लगाकर फेंक दिया। ऐसे ही, जैसे किसी पोले बांस को हवा में उछालकर फेंक दिया जाये।

भयावह आर्तनाद करते हुए केशी एक चट्टान से जा टकराये थे। पलभर में ही उस दुर्द्धर्ष शरीर के चिथड़े हो चुके थे।

उनके साथ गये मथुरा के अनेक सैनिक पागलों की तरह बदहवास वनों, अजानी दिशाओं की ओर भाग खड़े हुए। स्वयं वीरभद्र, दोनों गुप्तचर इतने भयभीत और हतप्रभ हो चुके थे कि उन्हे भी सही समय बचाव के लिए सही राह नहीं सूझी। परिणामतः वे भी अजानी गुफाओं, वनों में बिखर गये। कई प्रहरों तक अटकते-भटकते रहने के बाद ही परस्पर भेंट हो सकी थी उनकी और भूखे-प्यासे, गिरते-पड़ते वह जनपद के सघन वनक्षेत्रों में न जाने कहां भटकते हुए जैसे-तैसे कुछ क्षण पूर्व ही मथुरा लौट सके।

सब कुछ सुना था राजा ने, पर प्राप्ति को आश्चर्य हुआ था कि सुनजानकर भी वह उत्तेजना में चीखे नहीं थे। विचारशील होकर जैसे अपने:

आप और वातावरण से दूर चले गये थे।

वीरभद्र और दोनो गुप्तचरों को विदा करके महाराज कंस शात, सहज शय्या पर लेट रहे। प्राप्ति ने उनकी विचारमुद्रा को खंडित करने की कोई चेष्टा नही की थी। लगभग एक प्रहर पश्चात् राजा सो गये थे।

जागते ही अपने विशेष निवास मे चले गये थे वह। प्राप्ति सोचती रही थी कि अब कुछ घटेगा। कंस कौन-सा नया निर्णय लेंगे? यह सोचकर उन्हें तनिक शांति मिली थी कि महाराज कंस उत्तेजित नही दीखते थे। लगता था कि केशी के निधन ने अनायास ही किसी ज्वार को शात कर दिया है, संयत।

पर जल्दी ही समझ लिया था, भूल है। महाराज कंस की वह शान्ति किसी ज्वालामुखी के मुख जैसा सन्नाटा लिये हुई थी। जब विस्फोट हुआ, तब ज्ञात हो सका था कि वह शाति क्यों थी?

समाचार मिला था कि कृष्ण-बलराम शीघ्र ही मथुरा आने वाले हैं।

"मथुरा?" अचकचाकर पूछा था रानी ने, "भला वह क्यों मथुरा आयेंगे? किसलिए? क्या कारण हो सकता है?" इस अचकचाहट के पीछे अज्ञात भय था। अनेक आशंकाएं।

उत्तर मिला था, "महाराज ने ही उन्हें आमंत्रित किया है। वृद्ध मंत्री अक्रूर स्वयं ही उन्हें लेने गोकुल पठाये गये हैं।"

दूसरा धक्का अनुभव किया था रानी ने, "अक्रूर? वह क्यों?...और उन गोप बालकों को राज्यामंत्रण किस कारण?"

"उनके वीरत्व और योग्यता को समुचित राजसम्मान देने।" ऋतु ने बतलाया था, "याद है, महारानी, एक बार स्वयं यादवेन्द्र ने सभा में घोषणा

की थी कि वह नन्दलाल को राजसम्मान देंगे। गोकुल रक्षक जो हैं कृष्ण। यही विचारकर आमंत्रित किया है, फिर अवसर भी है।"

"कौन से ?" शब्द नहीं बोले थे महारानी ने, किंतु दृष्टि ने यही कहा।

"धनुष-यज्ञ जो होना है।" ऋतु ने बतलाया, "नगर-निवासी इस अवसर पर अपने-अपने गुणों का प्रदर्शन करेंगे। मल्लयुद्ध होगा, गदा-युद्ध, बाणसंधान, विभिन्न प्रतियोगिताएं भी आयोजित हो रही हैं। सुनते हैं कि इस अवसर पर ऐसी ही किसी प्रतियोगिता में कृष्ण-बलराम को भी भाग लेने के लिए कहा जायेगा।"

"ओह !" प्राप्ति इतना ही कह सकी। समझ गयी थी कि पति ने अब अन्य कोई छल-जाल बुन दिया है। जाने क्यों मन को अच्छा नहीं लगा था। लगा था कि यह सब अमानवीय है।

पर मनुष्यता पर विश्वास ही कब रहा है तुम्हारे पति का ? मन पुनः द्वंद्वशील हो गया।

अधिक सोचे, इसके पूर्व ही ऋतु ने निवेदन किया था, "देवि।"

"बोलो, ऋतु ?"

"आप आज्ञा दें, तो दो दिवस के लिए मैं गोकुल हो आऊं ?" ऋतु ने प्रार्थना की थी, "बहुत समय से परिजनों से भेंट की इच्छा हो रही है।"

"अवश्य !" प्राप्ति ने स्वीकृति दी। चली गयी। प्राप्ति उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी थी, जब कृष्ण-बलराम मथुरा आते।

वे आये, उसके पहले ही ऋतु गोकुल से लौट आयी। प्रसन्न, किंतु चिंतित भी। मथुरा लौटते ही वह सीधी प्राप्ति की सेवा में उपस्थित हुई

थी। हाथ बांधकर खड़ी हो रही। दुविधा मे घिरी उसकी मुद्रा ने बाध्य किया था महारानी प्राप्ति को। पूछें, "क्या बात है, ऋतु ?"

पूछ भी लिया था।

वह चरणो मे झुकी। हाथ उसी तरह बाधे रही, थरथराते शब्दो में प्रश्न किया, "महिमामयी, आप हृदय मे भी विशाल है, अतः पूछ रही हूं। विश्वास है कि उत्तर मे इस सेविका को सत्य ही सुनने को मिलेगा।"

"क्या हुआ ?" इस निवेदन ने चकित किया था रानी को।

"मैं गोकुल मे लौटकर सीधी यही उपस्थित हुई हू। रहा नही गया, इस कारण घर न जाकर स्वामिनी की सेवा मे आ गयी।" ऋतु ने उसी तरह हाथ जोडे हुए इस तरह कहा था, जैसे भिक्षा माग रही हो, "जो सुना है देवी, उसमे मुझे ही नही, अनेक गोकुलवासियो को चिंता हुई है। सोचा, आपसे ही सत्य सुन सकूगी।" बोलते-बोलते लगा था कि उसकी आवाज को कोई थामने लगा है, जैसे उसके अपने भीतर से कोई शब्दो को खीचकर भीतर ही ले जा रहा है, आगे नही।

"क्या जानना चाहती हो ?"

"वचन दें, महारानी, प्राणदान मिलेगा मुझे ?" घिघियाते हुए प्रार्थना की थी ऋतु ने।

"निर्भय होकर कहो ऋतु !" प्राप्ति ने कहा, "हमने तुम्हे कभी सेविका के भाव से नही देखा। सदा सखी जैसा स्नेह और सम्मान दिया है। कहो, क्या कहना है ? क्या जानने की इच्छा है ?"

"महारानी जी," ऋतु ने शंकित, किंतु दुविधापूर्ण शब्दों में पूछा था, "क्या यह सत्य है कि पुरस्कृत और सम्मानित करने के बहाने महाराज ने गोप बालकों को मथुरा बुलवाया है ? सम्पूर्ण गोकुलवासियों का यही विचार है, यही शका है उन्हे और इसी कारण वे सब भयभीत हैं।"

प्राप्ति क्या कहे ? कहा भी क्या जा सकता है ? सरलमना ऋतु के प्रश्न ने उस दिन धर्म-संकट में डाल दिया था उसे। सत्य भाषण क्या होगा

और असत्य किन शब्दो के अनुपयुक्त प्रयोग से निरूपित हो जायेगा, निश्चय करना कठिन था। एक क्षण चुप रहकर वह जैसे ऋतु से दृष्टि चुराती रही थी, फिर गहरा श्वास लिया।

ऋतु कुरेदे जा रही थी, "आपका वचन मेरे लिए यमुना जल की तरह पवित्र है, महारानी, मैं सदा ही आपके शब्द-स्वर पर यही विश्वास संजोये रही हूं। क्या सच ही महाराज कृष्ण से छल करने वाले हैं?"

इस बीच प्राप्ति शब्द बटोर चुकी थी अपने भीतर। कहा था, "ऋतु, विश्वास रखना मेरी सखी, तुम्हारी ही तरह मैं भी नही जानती कि वृद्धवर अक्रूर को भेजने के पीछे महाराज का मंतव्य क्या है?"

ऋतु का चेहरा बुझ गया था। दुविधा होते हुए भी दीख नही रही थी, किंतु इतना स्पष्ट था, महारानी के शब्दों पर विश्वास करते हुए भी अधिक विश्वास उसे कंस की ओर से होने वाले छल की आशंकाओं पर ही था।

प्राप्ति ने प्रश्न किया था, "गोकुल वासी वैसा क्यो सोचते हैं ऋतु?"

ऋतु ने सिर झुकाकर भरे गले मे उत्तर दिया था, "उनका सोचना सहज है, देवि, गोकुलवासियो की स्थिति मे जो भी हो, वह यही सोचेगा।" फिर उसने अक्रूर के मथुरा से गोकुल पहुंचने की समूची घटना कह सुनायी थी।

कहा था, "मेरे गोकुल पहुंचने के कुछ समय बाद ही अक्रूर जी गोकुल पहुंचे थे।"

अक्रूर ! उन्ही को क्यों चुना था महाराज कंस ने ? क्या अन्य अन्ध, वृष्णि, यादववंशी नही थे, जो वह आमंत्रण लेकर जाते ? प्राप्ति विचार करने लगी थी । इस विचार मात्र से, शंका पुष्ट हुई ।

निस्सन्देह राजा छल करना चाहते थे । अन्धक, वृष्णिवंशी यादवों में अनेक सामंतो के होते हुए साधुमन अक्रूर का राजसंदेश लेकर जाना, निश्चय ही राजनीति के नाम पर कुटिलता का द्योतक था । सब जानते थे कि अक्रूर सरल, सहज और मथुरा गणसंघ के प्रति पूर्णतः समर्पित राजपुरुष हैं । राजाज्ञा को धर्मादेश की तरह माननेवाले वृद्ध अक्रूर मन से निष्कपट थे । न कंस के प्रति उनमें दुराव था, न गोकुलवासियों या कृष्ण के प्रति कोई छिपाव । जब-जब गोप बालको को लेकर राजसभा में विचार हुआ था, तब-तब अक्रूर ही अकेले थे, जिन्होंने महाराज कंस को सत्प्रेरित करने की चेष्टा की थी । परिवार कलह से सावधान किया था ।

और उन्ही अक्रूर को अब सन्देशवाहक, आमंत्रक बनाकर राजा ने गोकुल भेजा । गोकुलवासी निश्चय ही उन पर विश्वास करेंगे । इस विश्वास की ओट में ही कृष्ण-बलराम से छल किया जायेगा ।

सरल अक्रूर राजा की कुटिलता समझकर भी राज्यादेश को धर्मादेश मानकर चले । दो प्रहर की यात्रा के बाद गोकुल की सीमा मे उनके रथ ने

प्रवेश किया। निश्चय ही उनके भीतर बहुत द्वन्द्व रहा होगा। प्राप्ति ने विचार किया था। संतमन अक्रूर एक बेबस पीड़ा से भरे हुए गोकुल पहुंचे होंगे। पाप-पुण्य का लेखा-जोखा करते हुए।

क्यों न करते? उन जैसे व्यक्तियों के लिए सहज रही होगी वह मनःस्थिति। जिसका मन जलवत् निर्दोष हो, वह पारदर्शी विचारों का आदी। अक्रूर ऐसे ही हैं, प्राप्ति जानती थी।

ऋतु ने गोकुल-सीमा में प्रवेश किया, वहीं ज्ञात हुआ था, " अक्रूर जी, आ पहुंचे हैं। कुछ ही क्षणों पूर्व गोप प्रमुख नन्द के गृह की ओर गये हैं।"

तेज-तेज कदम रखती हुई ऋतु अपने घर न जाकर नन्द गृह की ओर चल पड़ी थी। अक्रूर को देखा था उसने, किन्तु राजमर्यादा में बंधकर। एक सीमा से अधिक साधारण जन की हिम्मत ही क्या, जो राजपुरुष तक पहुंच सके। वही अक्रूर नन्दपुत्र की अलौकिकता के कारण आज गोकुल में जनसाधारण के बीच आ पहुंचे थे। राजा के दूत बनकर।

मन उत्सुकता और कौतूहल से भरा हुआ था। क्या हो रहा होगा नन्द के घर? किन शब्दों में चपल कृष्ण-बलराम को आमंत्रित किया होगा अक्रूर जी ने? किस तरह नन्द ने स्वागत-सत्कार किया होगा उनका?

एक ऋतु ही नहीं, अनेक गोप स्त्री-पुरुष नन्द गृह के पास एकत्र थे। सभी के चेहरों पर चिन्ता और दुविधा। विश्वास और अविश्वास के बीच असमंजस हिलोरें लेता हुआ। किसी का कहना था, राजा, कृष्ण के साथ छल करना चाहते हैं। किसी का अनुमान यह है कि कंस बाध्य होकर कान्हा की अलौकिकता स्वीकार चुके हैं। चाहते होंगे कि कोई उच्च पद देकर ऐसे अद्भुत बालक को वश में कर लें।

पर कान्हा इस तरह वश मे आयेगा ?

इन्हीं फुसफुसाहटो और शंका-कुशंकाओं से भरी टिप्पणियों को सुना या ऋतु ने। आगे बढ़कर नद बाबा के आगन में एकत्र गोप स्त्रियों के बीच जा पहुंची थी। वे सब सहमी, सकुची निगाहों से आंगन मे चारपाई पर बैठे हुए अक्रूर जी और नन्द बाबा को देखे जा रही थी।

यशोदा की पलकें बोझिल। कान्हा और बलराम पिता नन्द के पास ही आंगन मे एक ओर खड़े हुए थे।

सब ओर सन्नाटा था, बीच-बीच में गौओ की रंभाहट के स्वर उठते। लगता कि वह भी कान्हा के मथुरा बुलावे पर चिन्ता व्यक्त कर रही है, अशान्त है।

अक्रूर कह रहे थे, "तुम्हारे कान्हा को लेकर बहुत कुछ सुनता रहा था मैं। आज दर्शन करके मन प्रसन्न हुआ। सचमुच बहुत सुन्दर, मनमोहक और शान्तिदाता है तुम्हारा पुत्र।"

"मैं धन्य हुआ, मंत्रिवर।" नन्द ने भर्राये गले से उत्तर दिया था, फिर कहा, "सब कहते है कि मथुराधिपति कंस हम गोकुलवासियों, विशेषकर कन्हैया से रुष्ट है, किन्तु अक्रूर जी, सब यह भी तो जानते होंगे कि हम गोकुलवासियों या कान्हा ने ऐसा कोई कार्य नही किया है, जिसके कारण राजा को हमसे अरुचि हो, फिर भी पता नहीं महाराज क्यो रुष्ट है ? किस कारण बार-बार कान्हा पर विपत्तियां आ पड़ती है ?"

"कंस के अनुसार वह सब तुम्हारे वीर पुत्र की परीक्षा थी, नन्द।" अक्रूर ने उत्तर दिया था, फिर कहा, "किन्तु परीक्षाएं वध की चेष्टा में की जाती हैं, यह मुझे भी ज्ञात नही था, अतः यह कभी नही कहूंगा कि मथुराधिपति पर विश्वास कर लेना। यहां केवल दूत बनकर राजसन्देश देने आया हूं, वही सुनो !"

आश्चर्य ! नन्द ही नही, सभी गोप स्त्री-पुरुष चकित होकर अक्रूर के सरल, किन्तु चेतावनी-भरे वचन सुनने लगे थे। बहुत सुना-जाना था अक्रूर

जी को लेकर। शान्त भी हैं, सहज भी, किन्तु साक्षात् अनुभव उसी दिन हुआ। ऋतु श्रद्धा से भर उठी थी। सच ही तो। अक्रूर को राजपुरुष होते हुए भी इसी कारण संत कहा जाता है। सत्य, भक्ति, अहिंसा और स्नेह में डूबे हुए हैं वे। अभी-अभी उन्होंने जो कुछ कह डाला था, वह सब इसका प्रमाण !

वह कह रहे थे, "मथुराधिपति कंस ने धनुष-यज्ञ का विशेष आयोजन किया है। इस अवसर पर मथुरा ही नहीं अन्य राज्यों, गणसंघों के अनेक वीर भाग लेंगे। उनकी इच्छा है कि गोकुल के नन्द-पुत्र भी इस परीक्षा में भाग लें। उनकी वीरता, चतुराई और पराक्रम की सभी ओर प्रशंसा की जाती है। कान्हा और कर संकर्षण को उसी समारोह में पहुंचाने के लिए आमंत्रण और वाहन लेकर आया हूं मैं। इस राजाज्ञा को आप तक पहुंचाना मेरा धर्म था, अतः पहुंचाता हूं। स्वीकार करें !"

नंद कुछ कहें, इसके पूर्व ही पुरुष और स्त्रियों में फुसफुसाहटें फैल गयी थीं, फिर अनेक स्वर उठे। असन्तोष और क्रोध से भरे हुए, "नहीं-नहीं, ऐसे किसी समारोह में कान्हा या कर संकर्षण भाग नहीं लेंगे। हम गोकुलवासी भली प्रकार जानते हैं कि महाराज कंस भयभीत होकर दोनों ही बालकों का वध करना चाहते हैं।"

"हां।" कोई अकेली आवाज आयी, "कन्हैया नहीं जायेगा। यह छल जाल किसी और को दिखाना।"

नन्द उठ खड़े हुए। आदेशपूर्ण स्वर में कहा था, "शान्त ! शान्त हो, बन्धुओ ! शान्त हो !"

धीमे-धीमे सन्नाटा बिखर गया। नन्द ने वैसी ही धीर गंभीर वाणी में कहा, "आपकी आशंका सत्य भी हो सकती है, असत्य भी। मेरी स्वयं की भी इच्छा नहीं है कि बालक कृष्ण और कर संकर्षण मथुरा जायें, किन्तु राजाज्ञा का निर्वाह करना हम सभी का धर्म है। हम राज-मर्यादा की अव-हेलना नहीं कर सकते।"

"किन्तु नन्दराय ?" एक वृद्ध गोप आगे बढ आये थे, "आप जानते तो हैं कि महाराज कंस ने अपने कितने अनुचर असुरों को बालक के वध हेतु गोकुल भिजवाया था ? कितनी बार षड्यंत्र करके हमसे हमारे कान्हा को छीन लेना चाहा फिर भी···।"

"हां, फिर भी हम राजाज्ञा की अवहेलना के दोषी नहीं बन सकते।" नन्द ने आदेश से भारी स्वर में घोषणा की थी। सभी ओर सन्नाटा बिखर गया। ऋतु ने पाया था कि इस सन्नाटे में गोप प्रमुख के स्वरादेश का बंधन है। एक बेबस चुप्पी है, जो मर्यादावश अपने-आप को होंठों में दबाये जैसे-तैसे घोट रही है।

अनेक की आखें भर आयी थी। यशोदा पल्लू से आंखें पोंछ रही थी। जब लगा कि अश्रु थम नहीं रहे हैं, तब भीतर, कमरे की ओर चली गयी।

"आप सभी अपने-अपने घर जायें।" नन्द ने आदेश दिया था, "और गोरस आदि विभिन्न पदार्थ तैयार रखें। कल भोर हुए ही प्रमुख गोप जन मथुरा प्रस्थान करेंगे। कृष्ण-बलराम दोनों अक्रूर जी के साथ हमसे पहले चले जायेंगे !"

फुसफुसाहटों का ज्वार-भाटा पुनः उठा, बैठ गया। उसके साथ ही गोप नर-नारी बालक-बालिकाएं अपने-अपने घरों की ओर चले गये।

अक्रूर चकित भाव से सभी कुछ देखते रहे थे। जो गोप-गोपियां जहां-तहां बिखरे या नन्द-गृह में समाये रह गये थे, उनमें ऋतु भी थी। पीड़ा और कष्ट से भरी हुई। महाराज कंस छल को नीतिरूप में इस सीमा तक ला सकते हैं—कभी नहीं सोचा था। गोप-गोपियों के आवेशपूर्ण स्वर और पीड़ित दृष्टि गवाही दे रहे थे कि कंस के प्रति उनके मन में तनिक भी

विश्वास नही है। केवल राजभक्ति के संस्कार ने उन्हें अवश कर रखा था।

ऋतु मथुरा से जो स्वप्न मन में वसा लायी थी, सहसा ही छिन्न-भिन्न हो गया, फिर जो कुछ अपने घर पहुचकर माता-पिता से ज्ञात हुआ था, उसने विश्वस्त किया कि मथुराधिपति अबोध बालकों को शत्रुभाव से बुलाकर किसी छल-जाल में फंसाना चाहते है। मन घोर घृणा से भर गया था। कितनी ही बार अपने परिजनों को विश्वास दिलाने का विचार किया था कि संभवत: कंस कलुष नही रखते, पर हर बार विचार मात्र विचार ही रहा। जो सुना, वह प्रमाण था। उस पर तर्क-वितर्क करना व्यर्थ।

ऋतु ने बतलाया था, "देवि, कुछ प्रहर बाद ही संभवत: कृष्ण-बलराम मथुरा पहुंचनेवाले हैं। गोकुलवासियों का ही नहीं, मथुरा में भी अनेक लोगों का विश्वास है कि उनके साथ छल होगा।"

प्राप्ति उत्तर नही दे सकी थी। क्या कहती? निस्सन्देह उनके साथ छल होगा।

किन्तु क्या ऐसा कोई छल चपल कृष्ण को छल सकेगा? मन ने ही प्रश्न किया। लगा कि असंभव है। अब तक जो कुछ, जिस तरह घटता आया है, उसके कारण विश्वास नही होता कि कंस सफल होंगे। उलटे एक ही विश्वास होता है कि काला कान्हा पुकारा जानेवाला वह गोप बालक ही मथुरा मे किसी बड़े राजनीतिक उलटफेर का कारण बन जायेगा।

शूरसेन जनपद में बहुसंख्य लोग महाराज कंस के समर्थक नही है। उनकी चुप्पियां रहस्यमय हैं, उनकी दृष्टि द्विअर्थी, उनके मन बंटे हुए, किन्तु कान्हा को लेकर सब एकमत, उद्धारक होगा वह।

इसी विश्वास ने जैसे उस बालक को अमोघ शक्ति बना दिया है। कैसे

है वह शक्ति। इसका साक्षात् प्रमाण उस समय मिला था प्राप्ति को, जब सूचना आयी कि अक्रूर जी का रथ मथुरा में प्रवेश करनेवाला है। उनके साथ आ रहे हैं, नन्द के बेटे।

फिर इस सूचना के साथ ही हुई थी जन-प्रतिक्रिया। राज[illegible], सैनिकों से लेकर साधारण जन तक भारी संख्या ने स्त्री-पुरुष चमत्कार की तरह सुने-जाने जाते रहे नन्दपुत्र को देखने अपने-अपने घरों से या तो बाहर आ गये थे या फिर छतों, पर कोठों और झरोखों पर खड़े होकर उनकी अगवाई देखने लगे थे। विचित्र-सी उत्कंठा और कौतूहल [illegible] सब ओर।

कितना अच्छा होता, कंस उसी समय, [illegible] सके होते कि जिसके प्रति वह घोर घृणा [illegible] मानस का स्नेह और श्रद्धा के साथ-साथ [illegible] है। [illegible] विश्वास में बहुत शक्ति होती है। [illegible] साधन, बहुमुखी शक्ति।

किन्तु कंस उद्दंड क्रोध और [illegible] छलों पर आश्रित रहे थे, जो [illegible] कहलाये, उनका पाप [illegible]।

चित्रवत् वह दृश्य! [illegible] सिहरनों का भी न [illegible] लिए प्राप्ति के जीवन [illegible]।

अन्तहीन [illegible]

न कभी नष्ट की [illegible]

सकेगा। प्राप्ति जब, जिस समय भी उस घटित को याद कर बैठती हैं, मन दूर-दूरंत तक बिखरे मरुस्थल जैसा हो जाता है और प्राप्ति हिरनी, बदहवास, बेचैन, पल-पल मृत होती हुई अतृप्त आत्मा। इस मरुस्थल को उनके पति ने ही बिछाया था और स्वयं ही उसके पहले शिकार बने।

धनुष-यज्ञ! कंसायोजित धनुष-यज्ञ!

मथुरा नगरी को सीमा से राजनिवास तक वधू की तरह बहुरंगों में सजाया गया था, पर सब जान-देख रहे थे कि हर रंग के पीछे एकमात्र कलुष रंग है। कान्हा और फर संकर्षण की हत्या!

प्राप्ति भी जानती थी। रोमांच होता। मन विश्वास कर लेना चाहता कि पति कंस के हित में वैसा संभव हो सकेगा, किन्तु जाने क्यों, विचार सहेजते हुए भी मानस को सहमत नहीं कर पाती।

मथुरावासी भी रोमांचित थे। क्या होगा? लगता था कि सम्पूर्ण नगर साज-सज्जा और पुष्पों से सुगंधित होते हुए भी विचित्र-से सन्नाटे को झेल रहा है। एक डरावना सन्नाटा।

सन्नाटा उस समय टूटा था, जब ज्ञात हुआ कि मथुरा नगरी की सीमा पर अक्रूर आ पहुंचे हैं, फिर अगली सूचना मिली थी कि कृष्ण और बलराम सीमा पर ही उतरकर एक उद्यान में विश्राम करने रुके हैं, जहां पहले ही अनेक गोप आ पहुंचे थे, अनेक आने को थे।

ऋतु को साथ लिए, निवास के झरोखे पर बैठी हुई महारानी प्राप्ति विचित्र-से औत्सुक्यपूर्ण भय में डूबी रही थी। समाचार पर समाचार मिलते जा रहे थे।

अक्रूर चाहते थे कि श्रीकृष्ण उनके निवास स्थान चलें। वहीं विश्राम

करें, किन्तु उन्होंने कहा था "नही, यादव श्रेष्ठ, अभी नहीं।"

"फिर कब ?" अनचाहे ही प्राप्ति ने सूचना लाने वाली सेविका से प्रश्न किया था।

सेविका संकोच और भय से भरी हुई थी। जैसे-तैसे कह सकी थी, "वह उद्दंड और दुस्साहसी गोप बालक कहता है देवि, कि वह अक्रूर जी के यहां जायेगा, किन्तु उस समय जब महाराज का···।" बोलते बोलते गला सूखने लगा था सेविका का।

आगे कुछ नही पूछा प्राप्ति ने। गला उनका भी सूख गया था। अगले शब्द न कहते हुए भी स्पष्ट थे। कहा होगा, 'कंस की समाप्ति के बाद।'

हे, ईश्वर ! कैसी विचित्र स्थिति। कंस श्रीकृष्ण के वध के लिए छल-जाल बुनते हुए ! और कृष्ण कंस वध की घोषणा करते हुए।

सूचना लाने वाली सेविका चली गयी। अभी अधिक सोच सकें इसके पहले ही एक नयी सूचना आ पहुंची थी। मथुराधिपति के विशेष कक्ष से घबराई हुई सेविका ने आकर समाचार दिया था, "प्रणाम महारानी, बड़ा अनर्थ हुआ।" वह हांफ रही थी।

"क्या हुआ ?" प्राप्ति ने चौंककर देखा था उसे। ऋतु की दृष्टि घबरायी हुई।

सेविका ने कहा था, "जिस स्थान पर श्री कृष्ण-बलराम ठहरे हुए थे, उस ओर महाराज ने दुर्दान्त कुवलयापीड़ हाथी छुड़वा दिया। मदोन्मत्त हाथी ने उस क्षेत्र में भयावह नाश-रचना की। अनेक नागरिक हत हुए, अनेक घर और दुकानें नष्ट हो गयी, पर···पर उस हाथी को बालक श्रीकृष्ण ने मार डाला।"

"मदोन्मत्त हाथी को ?" लगभग चीखते हुए चकित, अविश्वसनीय भाव से प्राप्ति ने प्रश्न किया।

"हां देवि, यह सत्य है।" सेविका ने कहा, "अनेक नगरवासियों ने देखा है कि उस चपल बालक ने बड़ी चालाकी से उन्मत्त हाथी को ऐसी

जगह जा गिराया; जहां उसके शरीर की अनेक हड्डियां टूट गयी, फिर श्रीकृष्ण ने उस हाथी को भयंकर रूप में पीड़ित करते हुए, उसके दांत उखाड़ डाले। उन्हीं दांतों से उस हाथी के महावत व अनेक सैनिकों को, जो हाथी को निरंतर कृष्ण-बलराम की ओर धकेलते रहे थे, वध कर दिया।" समाचार पूरा करते-करते वह हांफने लगी थी। उसका चेहरा सपाट भय से श्वेत पड़ गया था। पुतलियां फैल रही थीं।

शब्दहीन प्राप्ति चुप बैठी रह गयी। मन चाहता था कि चीखकर कहें, यह असंभव है, किन्तु सूचना सत्य थी। अन्य अनेक सेविकाओं ने भी वही विवरण दिया था।

सोचें, विचारें या कहे, इसके पूर्व ही राज्यादेश मिला था कि धनुप-यज्ञ में पधारें! महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

रानी उठ पड़ी थी। कुछ ही समय बाद वह विशेष रूप से धनुष-यज्ञ के लिए बनाये गये विशाल, गोलाकार मंच पर आ बैठी थी। बड़ी संख्या में जनपद क्षेत्रों से आये स्त्री-पुरुषों के अतिरिक्त, जनपद प्रमुख, सैन्यनायक अस्त्र-शस्त्र कला के विशेषज्ञ और मल्लयोद्धा बैठे हुए थे।

महाराज कंस अपने भव्य आसन पर विराजित थे। रानी ने देखा था कि उनका चेहरा कुछ फीका-फीका-सा है। दृष्टि भी ज्योतिहीन। राजा प्रतिक्षण उन्हें निराश और व्यग्र दीख पड़े। प्राप्ति और अस्ति, अपने-अपने आसनों पर बैठी उन बहुचर्चित गोप बालकों को देखने की चेष्टा करने लगी थी, जिनकी चर्चा सर्वत्र थी।

गोपों की एक टोली प्रजाजनों की भीड़ में खड़ी थी। सबसे आगे दो किशोर। प्राप्ति की दृष्टि का यह अटकाव श्रीकृष्ण-बलराम की पहचान

का प्रमाण। वे ही हैं।

सबसे विचित्र, किन्तु आकर्षक श्यामवर्णी किशोर को चकित, ठगी-सी देखती रह गई थी प्राप्ति। कोमल, सुकुमार शरीर, सुगठित बदन और चमकती, मोहिनी बिखेरती आंखें, मोर-मुकुट माथे पर था। बाल घुंघराले, ऐसे जैसे आकाश पर घटाओं का छोटा-सा सागर उमड पड़ा हो। लहरों की तरह थिरकता हुआ। पीताम्बरधारी ! यह है कृष्ण ?

यही है कृष्ण ?...यशोदा और नंद का पालित शिशु ? वसुदेव-देवकी का रक्तांश। मथुराधिपति मामा है उसके। अनेक नाम नन्दलाल, देवकी सुत, यशोदानन्दन, कन्हैया, मोहन। और भी न जाने क्या-क्या ?

जितना अच्छा लगा था वह, उतना ही बुरा। प्राप्ति के पति का वध करने आया है वह। नहीं, प्राप्ति के पति ने ही वध के इरादे से उसे छल-पूर्वक बुलाया है।

सहसा राजघोषणा हुई थी, "नगरवासियो और सभाजनो ! महा-पराक्रमी महाराज कंस ने इस अद्भुत यज्ञ का आयोजन करने के पूर्व मल्ल-युद्ध की कुछ प्रतियोगिताएं भी आयोजित की है। शीघ्र ही आप विभिन्न मल्लों यथा चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल आदि के अद्भुत युद्धों का आनंद लेंगे, पर उसके पूर्व नगर-क्षेत्रों से आये नव युवकों को भी युद्ध हेतु आमंत्रित किया जायेगा। गोकुल-वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण और कर संकर्षण अपनी वीरता और युद्ध पारंगतता के लिए बहुप्रसंसित है। सबकी इच्छा है कि वह आगे आयें और राजमल्ल चाणूर और मुष्टिक से मल्लयुद्ध करे।"

वाद्यंत्र बजे। उद्घोषणा पूरी हुई। प्राप्ति ही नहीं, अनेक एक दृष्टि एक ओर खड़े विशालदृष्टि राजमहलो पर डाली। चाणूर और मुष्टिक। वे आगे बढ़ा चुके थे।

और बहुत-सी सहमी, सकुची निगाहे ठहरी हुई थी, गोप समुदाय पर जिनके ठीक आगे किशोर आयु के श्रीकृष्ण और बलराम खड़े थे। दोनों के शरीर कान्तिमय थे, किन्तु उस तरह कठोर, पाषाणवत् नहीं, जिस तरह

चाणूर और मुष्टिक के थे। बहुतेक की आत्मा धिक्कार से भर उठी थी, छि:! यह भी भला कोई प्रतियोगिता है? कोई नैतिकता? राक्षसों से कोमल पुरुषों को जुझाकर क्रूरतापूर्ण आनंद लिया जायेगा? अनेक मन विकृति से भर उठे।

स्वयं प्राप्ति को भी तो अच्छा नहीं लगा था, पर मन को थामा। नैतिक-अनैतिक पर विचार करने के पूर्व, उन्हें अपने शुभाशुभ पर विचार करना होगा। अतः उचित वही है, जो राज्यादेश हुआ।

अधिक सोचें, तभी देखा था, कृष्ण और बलराम गोप समुदाय की भीड़ से आगे, मैदान में आ पहुंचे थे। दोनों भाई, एक-एक मल्ल के सामने।

कुछ क्षण भयपूर्ण सन्नाटा रहा, फिर शोर होने लगा।

अद्भुत!

आश्चर्यजनक!

निःसन्देह, अद्भुत भी था। आश्चर्यजनक भी। श्रीकृष्ण और बलराम क्रमशः चाणूर और मुष्टिक के सामने। लगता था कि दो विशाल वृक्षों को चुनौती देती हुई चपल बेलें लहरा रही हैं।

क्या होगा? सोच या देख सकें, इसके पूर्व ही परस्पर बांहें फैलाए हुए दोनों जोड़ जूझ गये। चाणूर और मुष्टिक भयंकर प्रहार करते हुए, मुंह से विचित्र-विचित्र हुंकारें भी निकालते। यह हुंकारें वातावरण में स्तब्धता बिखेरती जाती। भय, घबराहट और सनसनी।

देर तक चलता रहा था दोनों का ही युद्ध। जो लोग यह समझ रहे थे कि कुछ ही क्षणों में चाणूर और मुष्टिक के प्रहार और दांव-पेंच गोप

बालकों को समाप्त कर डालेंगे, अब उन्हे विश्वास होने लगा था। विशाल देह मल्ल जिस तरह क्रमशः थकते, ढलते जा रहे थे, उससे प्रतिक्षण प्रमाणित हो रहा था कि श्रीकृष्ण-बलराम अपनी चपलता, त्वरितता, फुर्ती और आश्चर्यजनक कौशल के कारण उन मल्लो पर बहुत भारी पड़ने लगे हैं।

बहुत समय नही लगा था। श्रीकृष्ण के वज्र प्रहारों ने अनेक जगह से चाणूर को लगभग तोड़ दिया, फिर लगा था कि वह मल्लयुद्ध की सभी परंपराएं तोड़कर किसी-न-किसी प्रकार श्रीकृष्ण का वध कर डालना चाहता है। लोग भयग्रस्त होकर चीखने-चिल्लाने लगे थे, "यह अनीति है, दुष्ट मल्ल युद्ध की परम्परा का अपमान कर रहा है।" किन्तु प्रतिक्रिया में न कुछ होना था, न कुछ हुआ। युद्ध चलता रहा।

श्रीकृष्ण वायुवेग से चाणूर पर भयंकर मुष्टिक प्रहार करने लगे। एक के बाद एक। हर प्रहार किसी वज्र जैसा। प्रहार के साथ ही दैत्यदेह चाणूर के मुह से एक भयंकर आर्तनाद उठता, फिर उसका वह अंग शिथिल होकर शरीर में झूलने लगता, जिस पर कृष्ण ने प्रहार किया होता। उसके मुह, होठो और नाक से पहले फेन निकला था, फिर रक्त की अनेक धाराएं फूट पड़ी।

यही स्थिति हो चुकी थी मुष्टिक की। उसने भी अचानक दांव-पेंच से परे होकर संकर्षण की हत्या की चेष्टा आरंभ की थी। उत्तर में मिले बलराम के भयंकर प्रहार।

अंग-अंग झूलकर जहां-तहां से लटक गये, फिर वे पृथ्वी पर आ गिरे कुछ पल छटपटाये, उसके बाद निश्चेष्ट हो गये।

हांफते, किन्तु मुसकराते हुए श्रीकृष्ण-बलराम अब मल्लमंच पर से मथुराधिपति को देख रहे थे। नगर जनों ने जय-ध्वनि की।

प्राप्ति, उदास सहमी दृष्टि से पति को देखने लगीं। वह पसीना पोंछ रहे थे। रही-सही शरीर कांति गुम हो चुकी थी। संभवतः निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें, क्या कहें?

अभी, कुछ ही पल बीते थे कि चाणूर-मुष्टिक से निरंतर हुए युद्ध में थके हुए श्रीकृष्ण-बलराम की ओर कुछ मल्ल बढ़ने लगे। नगरजनों के बीच से अनेक आवाजें आयीं, "सावधान कृष्ण! वे दुष्ट छल से प्रहार करना चाहते हैं! सावधान, देवकीपुत्र!" और प्राप्ति ने चकित होकर गरदन मोड़ी। देखा कि श्रीकृष्ण बलराम के पास आ पहुंचे शल की ओर वायुगति से लपके। अगले ही क्षण उनके भयंकर पाद प्रहार से पीड़ित शल ने एक चीत्कार किया। वह दूर उछलकर सभामंच से जा टकराया। उसका सिर चकनाचूर हो गया।

किन्तु श्रीकृष्ण थमे नहीं, वह दूसरे मल्ल पर लपक पड़े थे। तोशल! हां, दुर्जेय, शक्ति वाला तोशल ही था वह। श्रीकृष्ण ने एक टांग पकड़ ली थी उसकी, फिर दूसरी टांग पर अपना पंजा जमाया। एक बीभत्स करुण पुकार विशाल सभा में गूंज गयी। तोशल को बीच से चीर डाला था यशोदा सुत ने।

"ओह!" कंस सहसा उठ खड़े हुए। उनका स्वर, शरीर चेष्टाएं सभी कुछ असंयत हो चुके थे। वह चीखे, "देख क्या रहे हो, मूर्खो! पकड़ो इन उद्दंड गोप बालकों को और डाल दो कारागार में! इन नीचों को जन्म देने वाले वसुदेव का वध कर दिया जाये! ऐसे राजद्रोहियों को शरण देने वाले मेरा दुष्ट पिता उग्रसेन भी दोषी है।"

यादव सामंत सहमे बैठे थे। ऐसे जैसे पल-भर पहले किसी ने उन्हें उनके स्थानों पर बांध दिया हो।

प्राप्ति और अस्ति के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगी थी। ओह! यह बालक, केवल चमत्कार नहीं, साक्षात् चमत्कार है। कभी सुना था कि अंधड़ों में भयावह शक्ति होती है, किन्तु पहली बार उन्होंने देखा था कि

आंधी ही नहीं, वायु के झोंके भी विशाल वृक्षों को पल-भर में धराशायी कर डालते हैं।

आड़ी-टेढ़ी चाणूर और मुष्टिक की लाशों के अतिरिक्त शल, तोशल के वीभत्स मृत शरीर पड़े थे। सैनिक जहां-तहां दुबक गये थे, और कृष्ण-बलराम क्रमशः धीमे-धीमे मंच की उन सीढ़ियों की ओर बढ़ रहे थे, जिन पर मथुरापति का आसन था।

कंस चीखते जा रहे थे, "अरे मूर्खो!···सुनो! कहां गये राजसेवक? सेनानायक!···सब सुनो!···इन विद्रोही गोपों को बन्दी गृह में डालो और इस दुष्ट नन्दपुत्र को···!"

शब्द पूरे हों, इसके पहले ही वायुगति से श्रीकृष्ण कंस की ओर पहुंचे। महाराज कंस ने खड्ग खींचा, पर अवसर नहीं मिल सका था प्रहार का। श्रीकृष्ण ने उन्हें बाजुओं में कसकर एक जोरदार उछाल ली। अगले ही क्षण कंस सीढ़ियों में लुढ़कते हुए मैदान में जा गिरे। रानियां चीख पड़ी थीं। इतनी आर्द्र और करुण पुकार थी उनकी कि समूचे सभागृह में गूंज गयी।

आहत हो चुके थे मथुराधिपति। साहसहीन भी। सम्भलकर उठ सकें इसके पहले ही श्रीकृष्ण उनके सीने पर चढ़ गये थे और फिर एक गुगुआहट! महाशक्तिशाली, पराक्रमी, वज्रदेह कंस की वह कातर गुगुआहट!

"नहीं-नहीं।" सहसा जोरों से चीखने लगी थी प्राप्ति। आंखें बंद थीं उनकी। चेहरा पसीने से सराबोर। दासियां दौड़ी आयीं।

"क्या हुआ, मगधसुता?"

पल-भर में अनेक राजसेविकाएं पहुंचीं। महाराज जरासन्ध के राज-भवन में सनसनी की तरह समाचार बिखर गया। सम्राट् की छोटी पुत्री

प्राप्ति सहसा ही बेसुध हो गयी। पल-भर में ही वैद्यराज आ पहुंचे। प्राप्ति को शय्या पर लिटाया गया। उपचार प्रारंभ हो गये। असंख्य सेवक-सेविकाएं प्राप्ति की सेवा-सुश्रूषा में व्यस्त। सांझ ढले सुधि आयी थी उन्हें। पलकें खोलते ही देखा था कि महाराज जरासन्ध चिन्तित, व्यथित दृष्टि से उनके पास बैठे हुए टकटकी बांधे देखे जा रहे हैं। कातर हो उठा था उनका स्वर, "क्या हुआ पुत्री?"

सहज होते-होते कुछ पल लगे प्राप्ति को, फिर स्मरण आया था कि पराक्रमी पति का वह क्रूरतापूर्ण वध दृश्य स्मरण करके सुधि खो बैठी थी, किन्तु यह सब बतलाना उचित नहीं होगा, अतः बोली थी, "ज्ञात नहीं, पितृ, किन्तु···किन्तु लगता है अचानक चक्कर आ गया।"

गहरा श्वास लेकर जरासन्ध उठ खड़े हुए। वैद्य ने पुनः परीक्षा की। कहा, "आश्वस्त हों, प्रभु, अब राजकुमारी ठीक है।"

वे सब चले गये थे। जरासन्ध कुछ पल उदास निगाहों से उन्हें देखते रहे, फिर कहा था, "तुम्हारी वेदना और कष्ट समझता हूं पुत्री। पर आश्वस्त रहो। हमारे बालकों को अवश्य ही उनके किये का दंड मिलेगा। मगधशक्ति उस समय तक शान्त नहीं बैठेगी, जब तक कि श्रीकृष्ण और बलराम हत नहीं हो जाते।" उनकी आंखें चमकी थीं। बहुत हिंस्र चमक थी वह।

प्राप्ति का मन हुआ था, उन्हें रोके, 'नहीं पितृ, नहीं।' पर शब्द नहीं निकल सके होंठों से। मगधराज कक्ष के बाहर जा चुके थे।

प्राप्ति कक्ष के सन्नाटे को देखती रहीं। संध्या के साथ ही सेविकाएं व्यवस्था करने लगी थीं, पर प्राप्ति देख रही थी, जरासन्ध की अनुपस्थित आंखों की हिंस्र चमक। डर लग रहा था···।

हां, यह चमक भय पैदा करती थी। क्यों न करती? यही, बिलकुल ऐसी ही चमक तो उन्होंने अनेक बार मृत्यु पूर्व अपने पति कंस की आंखों में देखी थी। तब क्या जरासन्ध भी···?

"न-न, ऐसा न हो ईश्वर, ऐसा कभी न हो।" वह बुदबुदा उठी, पर शब्दहीन। लगा कि अपने ही भीतर शब्द खौलकर जलन घोल गये हैं।

कक्ष में रोशनी झिलमिला उठी। □

रामकुमार भ्रमर

कृत

श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित

उपन्यास-माला

●

● कालचक्र - १ : ● कारावास - २

● कालिन्दी के किनारे - ३ : ● कर्मक्ष - ४

● कालयवन - ५ : ● अनाधार - ६

● जनपथ पर - ७ : ● जलयात्रा - ८

● जन-जन हिताय - ९ : ● जय - १०

महाभारत पर आधारित

उपन्यास-माला

●

● आरंभ - १ : ● असाध्य - ७

● अंकुर - २ : ● असीम - ८

● आवाहन - ३ : ● अनुगत - ९

● अधिकार - ४ : ● १८ दिन - १०

● अग्रज - ५ : ● अन्त - ११

● आहुति - ६ : ● अनन्त - १२